भारतवर्ष का इतिहास (दूसरा भाग)

(अंग्रेज़ी-युग तथा वर्तमान युग)

विषय सूची

भारतवर्ष का इतिहास

दूसरा भाग

(अंग्रेज़ी युग तथा वर्तमान युग)

प्रथम अध्याय

प्रारम्भिक यूरोपियन व्यापारी

नवीन जाति का आगमन

भारत को अनेक बार जीता गया। आर्यों ने उसे मूल निवासियों से लिया। मुसलमानों ने आर्य्यों को पराजित किया; अपनी बारी पर वे भी मराठों से परास्त किए गए, और सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में एक नई जाति ने प्रवेश किया जो भविष्य मे भारत की भाग्य-विधात्री बननेवाली थी।

प्राचीन काल में यूरोप और भारत का परस्पर व्यापार

अन्तरीप-मार्ग—यद्यपि सोलहवीं शताब्दी से पहले यूरोपियन भारत के विषय में बहुत ही कम जानते थे, पर इस देश का माल भूमध्यसागर (Mediterranean) की प्रधान प्रधान मंडियों में बहुत पहले पहुँच चुका था। ईसा के जन्म से पहले ही से काली मिर्च और गरम मसाले निकटवर्ती पूर्वीय नगरों बैबीलोन, नीनेवाह और सिडौन को जाते

थे, जहां से वे और बाज़ारों में भेज दिए जाते थे।

रोम-साम्राज्य के पतन के बाद वेनिस नगर के रहने वालों ने एक प्रजा-तन्त्र राज्य स्थापित कर लिया और भारत-यूरोपियन व्यापार पर पूर्ण अधिकार कर लिया। पूर्वीय देशा की वस्तुएँ भारत से वेनिस और जनेवा को, जो उस समय प्रधान सामुद्रिक शहर थे, बराबर जाती रहती थीं। वहां से वे यूरोप के अन्य बड़े बड़े नगरो में भेज दी जाती थीं, जहां उनकी ऊँचे दामो पर खूब बिक्री होती थी। प्रधान सामुद्रिक मार्ग लाल सागर और भूमध्यसागर से होकर जाता था। लाल सागर के रास्ते के मालिक अरब निवासी थे और भूमध्यसागर के इटली के निवासी। मिश्र पर तुर्कों का अधिकार हो जाने से यह मार्ग संकट-पूर्ण हो गया। अब यूरोपियन लोग भारत को जाने वाले किसी ऐसे मार्ग को खोज लेने के इच्छुक थे, जिसके द्वारा वे भी इस लाभकारी व्यापार मे भाग ले सके। अन्त मे पुर्तगीज़ों को अफ्रीका के नीचे से होकर जानेवाले मार्ग का पता लग गया। सन् १४६८ मे वास्को डी गामा ने आशा-अन्तरीप (Cape of Good Hope) का चक्कर काटा और मालाबार तट पर कदम रक्खा।

वास्को डी गामा

भारत मे पुर्तगीज़—आरम्भ मे तो पुर्तगीज़ों को अरब लोगों के हाथों बड़े कष्ट उठाने पड़े, परन्तु बाद में फ्रेंसिस्को ऐल्मीडा नामक प्रथम पुर्तगीज़ वायसराय ने उन्हे हराकर दामन और दियू से भगा दिया।

ऐल्मीडा

इससे सामुद्रिक मार्ग पर उनका एकछत्रराज्य हो गया और यूरोप भारत के व्यापार के वही पूरे मालिक होगए। उन्होंने इस अधिकार को सारी सोलहवीं शताब्दी मे बनाए रक्खा और अपने राज्य का भी बहुत कुछ विस्तार किया।

अल्वकुर्क

ऐलमीडा के बाद अल्वकुर्क वायसराय बनाया गया और उसने गोआ पर अधिकार किया जो शीघ्र ही एक अच्छा बड़ा शहर बन गया। अल्वकुर्क पूर्व मे पुर्तगीज़ साम्राज्य का स्थापक कहा जा सकता है,क्योंकि उसने आर्मुज और समुद्र के अन्य बहुत से स्थानों पर भी अधिकार किया था। सन १५१५ मे उसकी पदच्युती और मृत्यु के बाद भी पुर्तगाल के पूर्वीय साम्राज्य की सीमा मे विस्तार होता रहा और सोलहवीं शताब्दी बीतते बीतते पुर्तगीज राज्य की सीमा समुद्र तट पर १२०० मील तक व्याप्त हो गई।

परन्तु सत्रहवीं सदी के आरम्भ होते ही पुर्तगीज़ों का सौभाग्य-सूर्य्य अस्त होना आरम्भ हो चला। उन्होंने भारतीय व्यापार से एक सदी तक खूब लाभ उठाया। पर भारत की सम्पत्ति की कथा सुनकर डचों, अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों के मुंह मे पानी भर आया।

पुर्तगीज़ों का पतन

भारत के निवासियो ने इन नए यूरोपियनो के आगमन का स्वागत किया क्योंकि अब पुर्तगाज़ो से हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही घृणा करने लगे थे। वे शान्ति-पूर्वक व्यापार करना तो जानते ही नहीं थे, साथ ही वे सामुद्रिक लूटमार से भी धन प्राप्त करते थे। इसके अतिरिक्त वे यहां के निवासियों को जबरदस्ती ईसाई बनाते थे

बलपूर्वक धर्म परिवर्तन

जिससे सब ओर असन्तोष फैल गया था।

सन् १५८० में पुर्तगाल और स्पेन का राज्य एक हो गय
स्पेन के अमेरिका वाले विस्तृत उपनिवेशों के मुकाबले

स्पेन और पुर्तगाल का सम्मिलन

पुर्तगाल का पूर्वी साम्राज्य क्षुद्र-सा
अतः उसे तुच्छ दृष्टि से देखा जाने लग
उस समय स्पेन, अंग्रेज़ों और डचों से यु
कर रहा था, अतः एक राज्य होजाने के कारण पुर्तगाल को
इस युद्ध में भाग लेना पड़ा। इस लडाई से उसे बड़ी आर्थिक हा
उठानी पड़ी; इसलिए वह अपने प्रत्येक दूर-देशस्थ अधिकार

पुर्तगीज़ों से अधिक निपुण नाविक जातिया

बनाए न रख सका और अपने से अधि
बलवान सैन्य शक्तिवालों के आगे झुक
के लिए बाधित हो गया। धीरे धीरे पुर्तगीज़
के पास से सारे प्रदेश निकल गए, हाँ, गोआ, दामन, और दि
बाक़ी रह गए, जो अब तक उन्हीं के पास हैं।

डच—पुर्तगीज़ों को सत्रहवीं सदी में विशेषकर शुरू
आधी शताब्दी में डचों ने, जो उस समय सामुद्रिक-शक्ति
बहुत बढ़े चढ़े थे, इस क्षेत्र से निकाल बाहर कर दिया। डचों
नीदरलैण्ड में सन् १६०२ मे सम्मिलित ईस्ट इण्डिया कम्पनी
कायम की और जावा के बेटेविया नगर को अपना पूर्वीय केन्द्र
स्थल बनाया। वे गरम मसालों के व्यापार पर एकाधिकार करना
चाहते थे, इसलिए उन्होंने भारत पर अधिकार करने के स्थान पर
मलाया द्वीपसमूह पर कब्ज़ा किया और वहां से अन्य व्यापारियों

मसालों के द्वीपों पर प्रभुत्व

के व्यापार को नष्ट कर इन गरम मसाले वाले द्वीपों पर अपना एकाधिकार कायम कर लिया। भारत में उनका प्रधान केन्द्रस्थल बंगाल का चिनसुरा नगर था। परन्तु यहां अंग्रेजों की शक्ति की बढ़ती के साथ साथ वे अशक्त होते गए। फ्रास और स्पेन के साथ लगातार युद्ध करने से हालैण्ड की हालत बहुत कमज़ोर होगई थी, इसलिए

पतन

इंगलैण्ड ने उसके सामुद्रिक प्रभुत्व को नष्ट कर दिया। भारत मे डचो का जो प्रधान केन्द्रस्थल था, उस पर फ्रैंच लोगो ने क़ब्ज़ा कर लिया। अब अंग्रेज़ और फ्रांसीसी ही भारत मे प्रधान प्रतिस्पर्धी रह गए। पर मलाया द्वीपो पर डच लोगो का पहले की तरह ही अधिकार बना रहा।

फ्रांसीसी—पूर्व के व्यापार मे भाग लेने के लिये फ्रास ने शुरू मे जो प्रयत्न किए वे बेकार साबित हुए। सन् १६६४ मे एक फ्रैंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी क़ायम की गई और फ्रास से एक सेना भेजी गई जो कोचीन मे उतरी। इसकी मदद से सूरत मे एक फ़ैक्टरी क़ायम की गई। एक दूसरी फ़ैक्टरी मसुलीपट्टममें खोली गई। पांडीचेरी का स्थान बीजापुर के बादशाह से खरीद लिया गया और वह शीघ्र ही एक प्रसिद्ध शहर बन गया। अन्य फ्रैंच स्थान बगाल में चन्द्रनगर और मलाबार तट पर माही थे। डूमा (Duma) ने जो सन् १७३५ से १७४१ तक फ्रैंच राज्य का गवर्नर रहा, भारतीय नरेशों से मेल करके फ्रैंच प्रभाव बढ़ाना चाहा। फ्रांसीसियों का इसके बाद का इतिहास अगले परिच्छेद में दिया जाएगा।

अंग्रेज़-ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रारम्भिक इतिहास—भारत में जिन अंगरेज़ों ने सबसे पहले पैर रक्खा था, उनमें एक टामस स्टीफेन्स भी था, जो सन् १५७६ में गोआ में उतरा था। उसने अपने पिता को अनेक पत्र लिखे, जिनमें उसने देश के उपजाऊपन और पुर्तगीज़ों के व्यापार का विस्तार से वर्णन किया। उसके इन पत्रों को पढ़कर अंगरेज़ों में पूर्व के साथ व्यापार करने के लिए बड़ा चाव पैदा हो गया। अंगरेज़ों ने सन् १५८८ में स्पैनिश आर्मेडा पर विजय प्राप्त कर ही ली थी, अतः वे और भी अधिक उत्साहित हो गए। सन् १५६६ में अंगरेज़ व्यापारियो की एक कम्पनी ने भारत और आसपास के द्वीपों से व्यापार करने की अनुमति के लिए महारानी एलिज़ाबेथ से प्रार्थना की। सन् १६०० मे अनुमति मिल गई और कम्पनी बन गई।

स्टिफेन्स के पत्र

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का स्थापना

पहले दो बार गरम मसालों के द्वीपों की ओर यात्रा की गई। अंगरेज़ों ने वहाँ कुछ व्यापार भी किया, पर डच वहाँ बहुत शक्तिशाली बने हुए थे। इस द्वीप समूह से निकाले जाकर अंग्रेज़ों ने भारत मे एकत्र होने का निश्चय किया, जहाँ उनकी किस्मत जागने वाली थी। कम्पनी की तीसरी सामुद्रिक यात्रा मे एक जहाज़ सूरत पहुँचा। हाकिन्स इसी जहाज़ से उतरा था। वह जहांगीर के दरबार मे गया और वहाँ से सूरत में रहने की अनुमति मांग लाया। इस तरह अंगरेज़ों को खड़े होने भर को जगह मिल गई।

पुर्तगीज़ों में अब किसी तरह की ताक़त नहीं रही थी अतः उन्होंने अंगरेज़ों के रास्ते मे कोई रुकावट नहीं डाली। अंगरेज़ों ने पुर्तगीज़ों को सूरत के निकट स्वाली (Swally) के पास हरा भी दिया था। इस विजय से अंग्रेज़ों को सूरत मे कोठी बनाने का फरमान मिल गया। सन १६२२ मे अंगरेज़ों और फारसियों की सम्मिलित सेनाओं के हाथों में आर्मुज़ के आ जाने से पुर्तगाल के पतन मे रही सही कसर भी पूरी हो गई। अब अंगरेज़ों को उस से किसी तरह का भय न था। सन् १६१५ मे सर टामस रो एक राजदूत की हैसियत से भारत में आया और अपने देशवासियों के लिये कुछ व्यापारिक सुविधाएँ और रिआयते प्राप्त करने मे सफल हुआ। शाहजहाँ ने वोटन नामक एक अंगरेज़ सजन की सेवा से प्रसन्न होकर उससे कोई इनाम मांगने को कहा, इस पर उसने अपने स्वदेश वन्धुओ के लिये बंगाल मे विना किसी कर के व्यापार करने और कोठियां बनाने की अनुमति मांगी। बादशाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और हुगली शहर में एक कोठी कायम हो गई। सन १६६१ में चार्ल्स द्वितीय ने वम्बई के द्वीप को अपनी पत्नी कैथेराइन आफ़ ब्रेगेंजा के दहेज के रूप में प्राप्त किया और उसे दस पौंड प्रति वर्ष के नाममात्र के किराये पर कम्पनी को सौंप दिया। इससे पहले कम्पनी ने मद्रास का स्थान भी चन्द्रगिरि के राजा से खरीद लिया था और उस में सेंट जार्ज नाम की एक किलेवन्दी

पुर्तगीजों के साथ संघर्ष

सर टामस रो

वोटन का जाति प्रेम

वम्बई का द्वीप

फोर्ट सेंट जार्ज

वाली कोठी बनाने की अनुमति भी प्राप्त करली थी। सन १६६० में अङ्गरेज़ों ने हुगली नदी के पूर्वीय दलदली वाले किनारे पर, जहां आजकल कलकत्ता शहर बसा है, एक कोठी बनवाई, जो फोर्ट विलियम के नाम से मशहूर है। विलियम हैमिल्टन ने, जो अंगरेज़ डाक्टर था, बादशाह फ़रुर्खसियार की चिकित्सा करने के पुरस्कार मे अपने देशवासियोके लिए कुछ और भी महत्वपूर्ण सुविधाएं प्राप्त करली थीं।

फोर्ट विलियम

सम्मिलित ईस्ट इण्डया कम्पनी— ईस्ट इण्डया कम्पनी को भारत मे व्यापार करने का एकाधिकार मिलने से इङ्गलैण्ड में विरोध उत्पन्न हुआ और कुछ अन्य लोगो ने भी भारत से व्यापार करना आरम्भ किया। सन १६९८ मे एक दूसरी कम्पनी बनाई गई। दोनो कम्पनिया दस वर्षों की हानिकर प्रतिस्पर्धा के बाद सन् १७०८ मे मिला ली गई। इस प्रकार सयुक्त कम्पनी भारत मे अपने कार्यों और अपने अधिकारो की रक्षा करने मे पूर्ण स्वतन्त्र हो गई।

प्रति द्वंद्विनी कम्पनियों का सम्मिलन

प्रश्न

१. सोलहवीं शताब्दी में भारत में पुर्तगीज़ राज्य स्थापित होने का संक्षिप्त विवरण लिखो। पुर्तगीजों के पतन का कारण भी बताओ।

२. सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक ईस्ट इंडिया कम्पनी की चढ़ती का संक्षिप्त विवरण लिखो।

३. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखो—
वास्को डी गामा, अल्बकुर्क, गोआ, चंद्रनगर, सर टामस रो, बम्बई।

दूसरा अध्याय

अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों की प्रतिस्पर्धा

करनाटक के युद्ध

दक्षिण में ब्रिटिश शक्ति का उत्थान

इन्ही दिनो फ्रान्स से डूप्ले (Dupleix) आया। यह बड़ा चतुर और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। इस समय तक मुग़लों के हाथ से सारी शक्ति जा चुकी थी। दक्षिण मे सूबेदार आसफ़जाह, ने जो निज़ामुल्मुल्क के नाम से भी प्रसिद्ध था, मुग़लो को अधीनता का जुआ अपने कन्धो से उतार कर फेंक दिया था। करनाटक मे भी एक शक्तिशाली राज्य क़ायम हो चुका था। बाजीराव प्रथम की अधीनता मे मराठा शक्ति ज़ोर पकड़ रही थी और दक्षिण पर पूरा अधिकार कायम करने के लिए निज़ाम और मराठो में आए दिन झगड़े होते रहते थे। ऐसी दशा देख कर डूप्ले ने फ्रैंच साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखा। उसने सोचा कि देशी शासकों के काम में दख़ल देने से उसे लाभ पहुँचेगा।

दक्षिण

डूप्ले को अवसर मिला

क्योंकि इस के द्वारा उसको फरांसीसियों का गौरव बढ़ाने के अनेक अवसर मिलेंगे। वह हिन्दुस्तानी सिपाहियों को भी सैनिक शिक्षा दे रहा था, क्योंकि उसे विश्वास हो गया था कि यदि उन्हें उत्तम शिक्षा दी जाय और उनका योग्य यूरोपियन सेनापतियों द्वारा संचालन किया जाय, तो वह सेना भी यूरोपियन सेना से कम उपयोगी न रहेगी।

पुर्तगीज़ और डच इस समय तक पिछड़ चुके थे। ब्रिटेन का घोर प्रतिद्वन्दी अब फ्रांस ही था। दोनों ही भारत में औपनिवेशिक साम्राज्य क़ायम करना चाहते थे, किन्तु इतना बड़ा देश होते हुए भी भारत दोनों को स्थान नहीं दे सकता था। या तो इङ्गलैंड को अपनी नीति छोड़नी पड़ती, या फ्रांस को; अथवा इन दोनों प्रतिस्पर्धियों को आपस के उस संघर्ष के लिए तैयार होना पड़ता, जो अनिवार्य प्रतीत होता था। हम आगे चल कर देखेंगे कि अन्त मे युद्ध ही आवश्यक होगया।

करनाटक की पहली लड़ाई (१७४४-४८)—

भारत में अंग्रेज़ों और फ़रांसीसियों के बीच जो पहली लड़ाई हुई, वह सन १७४० में आस्ट्रिया की गद्दी के निमित्त यूरोप के युद्ध की (जिस मे फ्रैंच और अंग्रेज़ दोनों एक दूसरे के विरोधी थे) प्रतिध्वनि मात्र थी। भारत में दोनों देशों के लोगों में शान्ति, बनाए रखने की कोशिश भी की गई थी, पर डूप्ले नहीं चाहता था कि वह यह मौक़ा हाथ से जाने दे। उसने अर्काट के नवाब

अनवरुद्दीन के साथ सुलह कर ली और इस डर
घटनाएं
से कि कहीं अंग्रेज़ उसकी राजधानी पांडीचेरी पर धावा न कर दें, उसने नवाब के द्वारा अंग्रेज़ों के पास उस पर हमला न करने का संदेशा कहला भेजा। इसी बीच मे ला बूर्डौने की अधीनता मे एक सामुद्रिक सेना ने मद्रास पर धावा करके एक मामूली-सी लड़ाई के बाद उस पर कब्ज़ा कर लिया। पर उक्त फ्रैंच कप्तान ने ख़ासी रकम लेकर शहर वापिस कर देने का वायदा किया, परन्तु लाबूर्डौने के बाद डूप्ले ने मद्रास पर अधिकार कर लिया। अनवरुद्दीन उस समय दक्षिण भर का हाकिम था, इस लिये उसे आशा थी कि इस विजय का कुछ हिस्सा उसे भी मिलेगा। डूप्ले ने उसे कुछ देने दिलाने से साफ़ इन्कार कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर नवाब ने मद्रास पर क़ब्ज़ा करने के लिये दस हज़ार सेना भेजी। उसका सामना एक छोटी किन्तु सुशिक्षित फ्रैंच सेना ने किया और उसे बुरी तरह हरा दिया। डूप्ले ने इस विजय को और भी आगे बढ़ाने के लिये सेंट डेविड के क़िले पर धावा करने का इरादा किया, इसी समय अंग्रेज़ मेजर लारेंस ने आकर उन्हे पीछे हटा दिया और फिर पांडीचेरी पर धावा कर दिया। परन्तु

फरासीसियों की सफलता

अंतमे अंग्रेज़ो को बड़ी क्षति के बाद घेरा उठा लेना पड़ा। उधर ऐ ला शेपेल की सन्धि से यूरोप का युद्ध भी समाप्त हो गया था। इस सन्धि के अनुसार एक दूसरे के जीते हुए देशों को वापस कर देना आवश्यक था

इससे मद्रास अंग्रेज़ों को वापिस मिल गया। इस युद्ध से भारतवासियों की निगाह में फ्रैंच सेना का गौरव और डूप्ले का मान बढ़ गया।

करनाटक की दूसरी लड़ाई (१७४९–१७५४)—इसके कुछ दिनों बाद ही एक ऐसा मौक़ा आया जो डूप्ले की योजना के अनुकूल था। हैदराबाद का वृद्ध निज़ाम मर गया था और उसकी गद्दी पर अधिकार करने के लिये उसके बेटे नासिरजंग और पोते मुज़फ्फरजंग में झगड़ा उठ खड़ा हुआ था। इसी तरह का एक झगड़ा कर्नाटक में भी उठा। बात यह थी कि वहां के शासक अनवरुद्दीन का, जिसे मृत निज़ाम ने नवाब बनाया था, किसी पिछले नवाब के जमाई चन्दासाहब ने विरोध शुरू कर दिया था। मुज़फ्फर-जंग ने चन्दासाहब से मेल कर लिया और डूप्ले से सहायता की प्रार्थना की। वह तो यह चाहता ही था। इन सब की सम्मिलित सेना ने अनवरुद्दीन पर सन् १७४९ मे धावा बोल दिया और उसे मार डाला। अनवरुद्दीन का पुत्र मुहम्मद-अली भाग कर त्रिचिनापली जा पहुँचा। अब चन्दासाहब को केवल मुहम्मदअली को ही हराना था, इसके बाद वह करनाटक का शासक हो जाता।

कारण

अंग्रेज़ों ने इस बात से डर कर कि फ्रैंच लोग अपना प्रभाव बड़ी तेज़ी से बढ़ा रहे हैं, मुहम्मदअली और नासिरजंग का पक्ष

लड़ाई के बाद उस पर अधिकार करने में सफल हुआ। क्लाइव की बात ठीक निकली। जिस समय चन्दासाहब को इस बात की खबर हुई, उसने अपनी सेना का एक बड़ा-सा भाग अर्काट के पुनर्विजय के लिये भेजा, जिसके विरुद्ध क्लाइव ५३ दिनों तक साहस के साथ अपनी रक्षा करता रहा। इसके बाद उसे मद्रास की नई सेना से सहायता प्राप्त हो गई। जब चन्दा साहब की सेना ने घेरा उठा लिया तो क्लाइव ने उस पर हमला कर उसे अर्नी और कवेरीपाक में हराया। इसके बाद क्लाइव ने मेजर लारेंस के साथ, मुहम्मदअली को छुटकारा दिलाने के लिये, त्रिचनापली की ओर कूच किया। चन्दासाहब को घेरा उठाने के लिये विवश करके मुहम्मदअली को करनाटक का नवाब घोषित कर दिया गया। चन्दासाहब मैदान से भाग कर तंजौर के राजा के हाथ में पड़ गया और मारा गया।

अर्काट

पर डूप्ले इतनी जल्दी चुप होकर वैठने वाला नहीं था, उसने अपनी क्षतिपूर्त्ति करने का प्रयत्न जारी रक्खा। उधर अंग्रेज शांति चाहते थे क्योंकि इस लड़ाई का उनके व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ा था। पर डूप्ले कुछ नहीं सुनता था और इस बात पर अड़ा हुआ था कि जब तक उसे कर्नाटक का नवाब स्वीकार न किया जायगा, वह किसी तरह का समझौता न करेगा। अंग्रेज़ इसके लिये तैयार नहीं थे, इसलिये जब

डूप्ले के साथ समझौते की बात चीत का रद होना

वे अन्य सारे उपायों से हार गए तो उन्होंने इस मामले में सीधे फ्रांस के बादशाह से लिखापढ़ी करनी शुरू की। बादशाह और उसके दरबारी अपने संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण डूप्ले की उस महत्वाकांक्षा को जान हो न सके थे, जिसका प्रत्यक्ष परिणाम यह था कि फ्रैंच व्यापार नष्ट होता दिखाई देना। इसके अतिरिक्त दरबार मे डूप्ले के दुश्मन भी काफी थे, जिन्होंने उसके विरुद्ध बादशाह के कान खूब भरे।

डूप्ले को वापस बुला लिया गया

डूप्ले को वापिस बुला लिया गया और उसकी जगह गोडेहू नामक एक और अफ़सर को भेजा गया और सन् १७५५ मे पाडीचेरी की सन्धि के अनुसार युद्ध समाप्त कर दिया गया। इस संधि के अनुसार विजित प्रदेश वापस कर दिये गए, मुहम्मदअली को कर्नाटक का नवाब मान लिया गया, और इस प्रकार अंग्रेजो ने जिस उद्देश से युद्ध किया था, वह सब उन्हे प्राप्त हो गया, तथा फरासीसियो के हाथ मे जो कुछ पहले था वह भी निकल गया।

कर्नाटक की तीसरी लड़ाई (१७५८–१७६१)—सन् १७५६ मे यूरोप मे सात वर्ष का युद्ध छिड़ गया और भारत मे अंग्रेज़ों और फरांसीसियो मे पुनः विरोध बढ़ने लगा। फ्रैंच सरकार ने लाली को इस उद्देश्य से भारत का गवर्नर-जनरल और कमांडर-इन-चीफ बनाकर भेजा कि वह फरांसीसियों का पहला राज्य वापस ले लेने की कोशिश करे। वह पांडीचेरी मे सन १७५७ में उतरा। यह पलासी की उस लड़ाई के साल भर बाद का ज़िक्र है जिस से अंग्रेज़ो के हाथ मे

कारण

एक बड़ा सूबा और बहुत बड़े साधन आगये थे।

घटनाएं

लाली को शुरू शुरू में कुछ सफलता हुई। उसने फोर्ट सेंट डेविस पर अधिकार कर लिया और फिर मद्रास पर धावा करने का इरादा किया। पर उसके पहले वह निर्वाह के लिये किसी जगह क़ब्ज़ा करना चाहता था। उसने तंजौर पर धावा किया। उसमे उसे सफलता न हुई। अब उस ने उत्तरी सरकार से बुसी को बुला भेजा। यह बड़ी भारी भूल थी, क्योंकि उसके पीठ फेरते ही, क्लाइव द्वारा बंगाल से भेजे हुए कर्नल फोर्ड ने उत्तरी सरकार पर अधिकार कर लिया। निज़ाम ने भी फरांसीसियों का साथ छोड़ कर अंग्रेज़ों के साथ मेल कर लिया था और इस प्रकार फरांसीसियो का हैदराबाद रियासत में सारा प्रभाव नष्ट हो गया।

बांडिवाश

लाली और बुसी ने मिल कर मद्रास पर धावा किया और दो महीने के घेरे के बाद शहर पर अधिकार कर लिया, पर अंग्रेज़ सामुद्रिक सेना के आते ही उन्हे घेरा उठा कर भागना पड़ा। अब लाली के पास निर्वाह के लिये भी कुछ नहीं रहा था। सिपाहियों को वेतन नहीं मिला था और वे विद्रोह करने पर उतारू होरहे थे। सन् १७६० में सरआयरकूट ने वांडिवाश में फरांसीसियों को बुरी तरह हराया और बुसी को कैद कर लिया। अब स्पष्ट होगया था कि भारत में फरांसीसियो का साम्राज्य कायम करने का अवसर सदा के लिये चला गया। दूसरे साल ... अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। यह युद्ध भारत में

फ्रैंच शक्ति के पतन की अन्तिम घटना के नाम से प्रसिद्ध है। लाली फ्रांस को वापस लौट गया, जहां उस पर अभियोग चलाया गया और उसे प्राणदण्ड दिया गया।

पेरिस की सन १७६३ की सन्धि के अनुसार शान्ति स्थापित हो गई और सात वर्ष के युद्ध का अन्त हुआ। पांडीचेरी और अन्य कई स्थान फरांसीसियों को वापस दे दिये गए।

परिणाम

पर इसके बाद फरांसीसियो मे अंग्रेज़ों का मुक़ाबला करने की ताक़त कभी नहीं आई। अंग्रेजों ने गत सात वर्ष के युद्ध में यूरोप और अमेरिका मे जो कुछ प्राप्त किया था उसके मुकाबले मे उन्हे अपनी भारत की सफलता क्षुद्र-सी मालूम होती थी।

फराँसीसियो की असफलता के कारण—अंग्रेज़ो की सफलता कोई आकस्मिक घटना नहीं थी. उसके अनेक कारण थे। डूप्ले, लाली या बुसी मे बुराइयां निकालना व्यर्थ होगा, क्योंकि यह कहना कठिन है कि वे अयोग्य व्यक्ति थे। यदि हम क्लाइव, लारेंस या कूट को अधिक योग्य सेनापति मान भी ले, तो भी यह अन्तर इतना थोड़ा था कि केवल इसी आधार पर हम किसी की सफलता का कारण स्थिर नहीं कर सकते। वास्तविक कारण इससे गहरा था।

अंग्रेज कम्पनी को अपनी प्रतिद्वंद्विनी फ्रैंच कम्पनी की अपेक्षा अधिक सुविधाएँ प्राप्त थीं। फ्रैंच कम्पनी के हिस्सेदार अपनी कम्पनी के मामलो मे बहुत कम दिलचस्पी लेते थे। उसके पास धन का अभाव सा

अंग्रेज़ कम्पनी की श्रेष्ठता

रहता था। फ्रैंच सरकार को निजी युद्धों से ही फुरसत नहीं थी, वह इस कम्पनी की उन्नति के लिये अवकाश और धन कहां से लाती। वस, डूप्ले की महत्वपूर्ण योजनाओं के असफल होने का बड़ा कारण धनाभाव था। इसके विपरीत अंग्रेज़ो की ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आर्थिक दशा बड़ी दृढ़ और अच्छी थी। अंग्रेज इस बात को कभी नहीं भूले कि उनका मुख्य उद्देश्य व्यापार करना है और लड़ाइयो मे भी वे अपना व्यापार निरन्तर करते रहे। डूप्ले राज्य बढ़ाने के उत्साह मे व्यापार को एक गौण काम समझने लगा था, परन्तु अंग्रेज़ हर एक विजय से अपने लाभ की कोई न कोई बात अवश्य निकाल लेते थे। डूप्ले की इस नीति का फल यह हुआ कि फ्रैंच सरकार, कम्पनी को लाभ के साधन के स्थान पर एक व्यर्थ का भार समझने लगी। इसके विपरीत अंग्रेज कम्पनी के पास धन बढ़ता जाता था।

अंग्रेज़ो की सामुद्रिक शक्ति की उत्कृष्टता भी उनकी विजय का एक कारण थी। अंग्रेज़ ससार भर की सर्वोत्तम सामुद्रिक शक्ति के स्वामी समझे जाते थे और प्रायः सम्पूर्ण सामुद्रिक मार्ग उनके अधिकार मे थे। वे किसी स्थान पर सामग्री और आदमियो को बड़ी मात्रा और संख्या में एकत्र कर सकते थे, पर फराँसीसियों के विषय मे यह बात नहीं थी। फ्रास को सात वर्ष के युद्ध में अनेक वार सामुद्रिक लड़ाइयों मे हराया गया था, इस लिये उसकी सामुद्रिक शक्ति पर बड़ा विपरीत असर पड़ चुका था।

अंग्रेजों की सामुद्रिक शक्ति की उत्कृष्टता

अंग्रेज़ों ने सन् १७५७ मे बंगाल पर जो विजय प्राप्त की थी, उसका भी इस फ्रैंच-अंग्रेज़ युद्ध पर काफ़ी असर पड़ा। अंग्रेज़ों के हाथ मे खाद्य सामग्री और सैनिक सामग्री काफ़ी मात्रा मे आ गई थी। लाली ने वास्तव में एक ऐसा काम अपने हाथ मे लिया था जिसमे कामयाबी की कोई सूरत नही दीखती थी। उसके भारत मे आने से पहले ही फरासीसियो की स्थिति दुर्बल हो चुकी थी। पांडीचेरी से चल कर और एक ऐसी शक्ति से युद्ध करके, जिसके अधिकार मे बंगाल था और जिसका समुद्र पर प्रभुत्व था, सिकन्दर या नैपोलियन भी नहीं जीत सकता था।

अंग्रेज़ों की बङ्गाल-विजय

साथ ही यह भी ठीक कहा गया है कि फरासीसी अधिकारियो मे परस्पर सहयोग नहीं था। अनेक बार ऐसा अवसर आया, जब किसी फरासीसी को आपत्ति मे देख कर भी उसके संगी साथी बिलकुल अलग रहे। पर इन सब कारणो मे मुख्य कारण इंगलैंड के प्रधान मन्त्री पिट की प्रभाव-शालिनी नीति थी, जिससे फ्रांस भारत के फरासीसियों को कोई सहायता न दे सका। अपने अमेरिका और यूरोप के युद्धो तथा विपत्तियो से फ्रांस वैसे ही चकनाचूर हुआ जा रहा था। अत. यह बात ठीक कही जाती है कि फरासीसियो ने अपना भारत का साम्राज्य क्वीबेरन और क्वीबेक के युद्धक्षेत्रों में खोया, त्रिचिनापली और वांडिवाश मे नहीं।

पिट की नीति

डूप्ले—अंग्रेज़ो और फरासीसियों की प्रतिस्पर्धा की

कहानी को समाप्त करने से पहले डूप्ले के कार्य्य और चरित्र पर एक दृष्टि डालना उचित होगा। इस संघर्ष में उसका एक विशेष स्थान है। अभी हम उसके प्रतिद्वन्द्वी क्लाइव का ज़िक्र आगे के लिए छोड़ देते हैं। भारत मे क्लाइव का कार्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता, अभी उसे और भी वहुत से काम करने थे, और भी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त करनी थी।

डूप्ले की तारीफ़ भी की जाती है और निन्दा भी। परन्तु इस बात में किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि वह भारत के इतिहास में एक अत्यन्त उल्लेखनीय व्यक्ति था। प्राय: उस की तथा-कथित दुर्वलताओं, छल, मिथ्या गर्व और रुपये पैसे के मामले में अनैतिक आचरण पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दिया जाता है, परन्तु ऐसी बातो में आकर हम यह भूल जाते हैं कि वह एक सुयोग्य शासक था और अपनी योजनाओ में मौलिक और साहसी था। कुछ समय तक उसने फरांसीसियो को दक्षिण में सबसे ऊँचा स्थान देने में सफलता भी प्राप्त की। परन्तु वह उन्हें उस उच्च स्थिति में अधिक दिनों तक नहीं रख सका; क्योंकि उसके पास अभीष्ट साधनों का अभाव था और इससे उसकी योजनाओं में बाधा पहुँचती थी।

उसने क्या सफलता प्राप्त की, इस दृष्टि से नहीं किन्तु उसने किस ढङ्ग पर अपना काम किया, इस दृष्टि से विचार करने पर हम देश-सेवा के लिये उसकी तत्परता और प्रयत्नों की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। अपने देश के हित-साधन के लिए उसने

अपनी सम्पत्ति को भी खर्च करने में संकोच नहीं किया। हमें उसी के शब्दों मे कहना चाहिए कि उसने एशिया में अपनी जाति को समृद्ध बनाने के लिए अपना यौवन, अपनी सम्पत्ति और यहां तक कि अपने जीवन को भी अर्पण कर दिया। पर उसके स्वदेश मे इस देशभक्ति और आत्मत्याग की प्रशंसा नहीं हुई। वह सन् १७५५ मे फ्रांस को अपमानित दशा मे वापिस हुआ और कुछ वर्ष विपत्ति में काट कर पैसे पैसे के लिए तंग हो कर मरा।

हम इस परिच्छेद को समाप्त करने से पहले डूप्ले के विषय में एक इतिहास-लेखक की सम्मति देना उचित समझते हैं। अनेक दुर्बलताएँ होते हुए भी वह अपने समय के और वस्तुतः इतिहास के अग्रणी फरांसीसियो मे गिना जाएगा। उसने सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न बड़े साहस और वीरता के साथ किया, परन्तु वह असफल रहा, उसकी जैसी स्थिति के आदमी के लिए हार अपमान-जनक बात नहीं थी। जब कभी वह साम्राज्य का स्वप्न देखता था, उसका देश उसमे प्रमुख स्थान ग्रहण किये होता था। उसके जीते जी उसके देशबन्धुओ ने उसके गुणो का आदर नहीं किया, तथापि ऐतिहासिकों ने उसे फ्रैंच वीरो मे अग्रगण्य स्थान दिया है और वह अपने देशवासियों के हृदयो मे एक महान् देशभक्त और अंग्रेजो के दिलो मे एक वीर शत्रु के रूप मे सदैव अंकित रहेगा।

प्रश्न

१. कारणों, घटनाओं और परिणामो पर प्रकाश डालते हुए

करनाटक की दूसरी लड़ाई का संक्षिप्त वर्णन करो।

२. दक्षिण पर प्रभुत्व बैठाने में अंग्रेज़ों की सफलता और फरासीसियों की असफलता का कारण लिखो।

३. डूप्ले की नीति और चरित्र के विषय में तुम क्या जानते हो ?

४. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखो: —

काउण्ट डी लाली, बुसी, अर्काट और वाडिवाश।

तीसरा अध्याय

बंगाल में ब्रिटिश शक्ति की बढ़ती

सिराजुद्दौला—दिल्ली के प्रति बंगाल की राजभक्ति कभी स्थिर रूप से नहीं रही, क्योंकि दूरवर्ती प्रदेश होने के कारण दिल्ली के शासक उस पर अपना काफ़ी प्रभुत्व बनाए न रख सके। मुग़ल शक्ति के ह्रास होते ही देश मे अनेक सूबेदारों और शासकों ने अपनी अपनी स्वतन्त्र रियासतें कायम करलीं। उन्हीं मे बंगाल का एक अलीवर्दीखां भी था। वह एक चतुर और योग्य शासक था। उसने यूरोपियन लोगो के व्यापार मे कभी दखल नहीं दिया। वह सन् १७५६ मे अपने दोहते सिराजुद्दौला को उत्तराधिकारी नियुक्त करके मर गया। सिराज विवेकहीन और आचरण-भ्रष्ट युवक था, जिसे किसी तरह की शिक्षा नहीं मिली थी। बाल्यकाल में उसके नाना अलीवर्दीखां ने बेहद लाड़ प्यार से उसकी आदतें बिगाड़ दी थीं।

ब्लैकहोल की दुर्घटना—सिराज ने अंग्रेज व्यापारियों

की सम्पत्ति के बारे में अतिशयोक्तिपूर्ण बातें सुन रक्खी थीं और वह उनके साथ युद्ध करने का कोई न कोई बहाना ढूंढ़ना चाहता था। यह बहाना मिलने मे देर न लगी। जब यूरोप में सात वर्ष का युद्ध शुरू हुआ तो उसकी तैयारी के लिये अंग्रेज़ो ने अपने क़िले की मरम्मत शुरू की। इस पर सिराज ने, जो लड़ाई के अवसर की तलाश मे ही था, फोर्ट विलियम क़िले के गवर्नर के पास कहला भेजा कि पुराने क़िले मे उसने जितनी नई मरम्मत कराई है, उसे वह गिरा दे। इसके सिवाय अंग्रेज़ों के एक कार्य से नवाब को इस बात का एक और कारण मिला। उन्होंने एक ऐसे आदमी को शरण दी, जिसे नवाब सज़ा देना चाहता था। जब मांगने पर भी नवाब के हाथ मे अपराधी को न सौंपा गया और क़िलेबन्दी भी न गिराई गई तो सिराजुद्दौला ने युद्ध करने का निश्चय कर लिया।

सिराज ने कासिम बाज़ार की अंग्रेज़ो की कोठी को लूट लिया और फिर कलकत्ते की ओर एक बडी सेना के साथ प्रस्थान कर दिया। किले की सेना ने पांच दिन तक वीरता के साथ अपनी रक्षा की, परन्तु अन्त मे किले की रक्षा का भार हालवैल नामक व्यक्ति की अधीनता मे थोडे से आदमियों को छोड कर सेनापति ड्रेक नदी के एक रास्ते छोटी-सी नाव में बैठ कर भाग निकला। क़िले की सेना ने अपनी रक्षा के लिये दो बार और प्रयत्न किया, पर बाद को इसका कुछ फल न होते देख कर आत्मसमर्पण कर दिया।

सिराज ने क़िले मे घुस कर सिपाहियो को क़ैद कर लिया। उन्हे एक मामूली कर्मचारी को सौप दिया, जिसने कहा जाता है कि एक बीस फीट लम्बी चौडी कोठरी मे इन सब (१४६) अंग्रेज़ों को ठूंस दिया, जहा वे रात भर खिड़की के पास जगह पाने की कोशिश मे एक दूसरे पर टूटते रहे। जब सुबह को दरवाजा खोला गया तो केवल तेईस आदमी ज़िन्दा निकले। ❀

इस काल कोठरी वाली दुघटना से सारे ब्रिटिश साम्राज्य मे क्रोध और उत्तेजना की लहर दौड़ गई और प्रतिहिंसा की ध्वनि ज़ोर से उठ खड़ी हुई। संयोग से, उस समय एडमिरल वाटसन अपने छोटे-से दस्ते के साथ मद्रास ही में था। क्लाइव, जो अपनी सन १७५२ की सफलता के बाद घर चला गया था, वापस आगया था। दोनो ने मिल कर यथासम्भव सेना इकट्ठी की और कलकत्ते की ओर कूच कर दिया। २ जनवरी सन १७५७ को बहुत मामूली से युद्ध के बाद कलकत्तेपर अधिकार कर लिया गया। एक सप्ताह म हुगली पर भा अधिकार कर लिया गया। इस दशा मे सिराजुद्दौला ने अंग्रेज़ो से समझौता कर लिया, उन्हें उनके सारे अधिकार लौटा दिए। उनका माल वापस कर दिया और उन की सम्पूर्ण क्षति की पूर्त्ति करदी।

सहायक सेना

सुलह

❀ अनेक इतिहासकार इस प्रकार की दुर्घटना की वास्तविकता को अस्वीकार करते है।

इसी समय खबर मिली कि फ्रास के साथ फिर युद्ध छिड़ गया है, अतः अंग्रेज़ सेनापतियों ने अपनी सेना का रुख चंद्रनगर की ओर फेर दिया और उस पर अधिकार कर लिया।

मीरजाफ़र के साथ षड्यन्त्र—सन्धि हुए अभी बहुत समय न हुआ था कि सिराजुद्दौला ने अंग्रेज़ों के खिलाफ़ अन्य प्रयत्न आरम्भ किए। उसने फ्रैंच सेनापति बुसी को निमन्त्रण दिया कि वह दक्षिण से आकर अंग्रेज़ो को सम्पूर्ण बङ्गाल से निकाल दे। क्लाइव इस सारी स्कीम को जान गया था। अतः उसने अन्तिम आघात करने का निश्चय किया। और इस के लिए उसे मौका भी जल्दी मिल गया। नवाब के दरबारी उसके शासन से असंतुष्ट थे और मृत नवाब अलीवर्दीखां का बहनोई जाफ़र—जिसके ज़िम्मे तनख्वाह बांटने का काम था—उन सब का अगुआ था। वह बंगाल की गद्दी पर अधिकार करना चाहता था। उसने क्लाइव से बातचीत करनी आरम्भ की, फलत. एक षड्यन्त्र रचा गया। क्लाइव ने हाल ही मे नवाब के साथ एक सन्धि की थी. तथापि उसने इस षड्यन्त्र में पूरा सहयोग दिया। बात बहुत दिनों तक नहीं छिपी रह सकी और नवाब के कानो तक भी इस षड्यंत्र की खबर पहुँच गई, जिससे उसके दिल में सन्देह उत्पन्न होगया, परन्तु यह संदेह नवाब के खज़ांचो अमोचन्द के कौशल से जल्दी ही जाता रहा। यह षड्यन्त्रकारियो के एजेण्ट के रूप में काम कर रहा था। उसने धमकी दी कि यदि

लाल कागज़ और सफ़ेद कागज़

उसे तीस लाख रुपया न दिया गया तो वह सारा भण्डाफोड़ कर देगा। इस पर मीर जाफ़र और क्लाइव ने एक झूठा प्रतिज्ञा पत्र लिखा। क्लाइव ने अपने आप को अमीचन्द की चाल में उससे बढ़कर साबित किया। तथापि क्लाइव के इस कार्य्य को उचित नहीं कहा जा सकता। क्लाइव ने प्रतिज्ञा-पत्र की दो कापियां कीं, एक सफ़ेद कागज़ पर, दूसरी लाल कागज़ पर। पहली सच्ची थी और दूसरी धोखा देने के लिए बनाई गई थी। उस नकली प्रतिज्ञा पत्र मे अमीचन्द का नाम दर्ज कर दिया गया था। इस प्रकार आई हुई मुसीबत को टाल दिया गया। वाटसन ने इस झूठे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया था। इस पर क्लाइव ने उसके भी जाली हस्ताक्षर बना लिए।

पलासी की लड़ाई—जून २३, सन् १७५७—बस, अब आक्रमण की ही देर थी। क्लाइव ने नवाब को एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखा जिसमे उसने वे सब कष्ट लिखे जो उस समय तक अंग्रेज़ों को नवाब के हाथों मिले थे, और उस पर हाल ही में की गई संधि को भंग करने का दोष भी लगाया। उसी दिन वह अपनी तीन हज़ार फौज के साथ मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हो गया। नवाब की सेना ने, जिसके बारे मे कहा जाता है कि उसमे ५०,००० पैदल और १८,००० घुड़सवार थे, पलासी गांव के निकट, जो चन्द्रनगर से २३ मील दूर था, मोर्चाबन्दी की थी। यह पहले से ही तय हो गया था कि लड़ाई शुरू होने से पहले ही मीर जाफ़र अपनी सेना के साथ अंग्रेज़ो की ओर आ

क्लाइव की द्विविधा

मिलेगा। मीरजाफ़र ने वादा पूरा करने में देरी की, अतः क्लाइव ने अपने को भयंकर संकट में पाया। शत्रु की सेना इतनी विशाल थी कि क्लाइव अपने जीवन में पहली वार हमला करने से झिझका। पर वह साहस करके लड़ाई के लिये आगे वढ़ा। यह लडाई परिणाम में तो अत्यन्त महत्वपूर्ण थी, पर वीरता की दृष्टि से किसी भी अंश में प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। सर आयरकूट के धावे से नवाव की सेना में भगदड़ मच गई और तुरन्त ही मुर्शिदाबाद पर अधिकार कर

मीरजाफर को नवाब बनाया गया

लिया गया। नवाब को मीरजाफ़र के लड़के ने पकड़ कर मार डाला। मीरजाफ़र को वंगाल का नवाव वना दिया गया। नए शासक को अपने पद के लिए काफ़ी रकम देनी पड़ी। क्लाइव और अन्य अफसरों को वड़ी वड़ी रक़मे दी गईं। मीरजाफ़र ने अंग्रेज़ों को एक वड़े से इलाके पर, जो आज कल चौवीस परगना के नाम से प्रसिद्ध है, जमींदारी का अधिकार दे दिया।

क्लाइव का वंगाल में पहला शासन-प्रवंध (१७५७–१७६०)

पलासी के युद्ध से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रसिद्धि वढी, और यद्यपि वंगाल, विहार और उडीसा का शासक मीरजाफ़र

अली गौहर का आक्रमण

कहलाता था, तथापि असली शासक क्लाइव ही था। कुछ अन्य घटनाएं ऐसी हुईं जिनसे मीरजाफ़र ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भार से और भी दव गया। सन १७५६ मे शाहज़ादा अली गौहर ने, जो मुग़ल सम्राट का

था, दिल्लीकी बादशाही सेना लेकर अवधके नवाब शुजाउद्दौलाके
थ बिहार पर हमला कर दिया। मित्र सेनाएँ पटने की ओर बढीं
और उन्हों ने शहर के चारों ओर घेरा डाल दिया। मीरजाफ़र डर
या पर क्लाइव ने आक्रमणकारियों का सामना करके उन्हे भाग
ाने के लिए विवश कर दिया।

कम्पनी की बढती हुई शक्ति से मीरज़ाफ़र की घबराहट दिन
प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसने चुपके चुपके डचों से बातचीत की।

डचों की हार

ये लोग उस समय चिन्सुरा मे रहते थे। बटेविया
से डच सेनाओ के जहाज़ आए। परन्तु क्लाइव
ने फुर्ती के साथ डचो को बुरी तरह हरा दिया और उन्हे हर्जाने के
रूप मे एक बड़ी रक़म भी अदा करनी पड़ी। बस डचो की यह
आख़िरी लड़ाई थी। इसके बाद वे भारत के राजनीतिक क्षेत्र से
हमेशा के लिये चले गए।

बंगाल की जीत से अंग्रेज़ भारत मे प्रधान शक्ति बन गए
और जब दक्षिण मे उनकी फरासीसियो से लड़ाई हुई तो बंगाल

दक्षिण में जीत

से उन्हे बड़ी मदद मिली। पलासी के युद्ध के बाद
ही मे क्लाइव को मालूम हुआ कि लाली दक्षिण
मे फरांसीसियो का पहिले जैसा प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न
कर रहा है। जिस समय बुसी को लाली ने अपने पास बुला लिया,
उसी समय क्लाइव ने अच्छा मौका देख कर कर्नल फ़ोर्ड को एक
सेना देकर दक्षिण की ओर भेज दिया। कर्नल फोर्ड ने फरासी-
सियो से उत्तरी सरकार का इलाका छीन लिया समझ उसके बाद

वांडिवाश मे अंग्रेज़ो की जीत हुई और फरांसीसियों की शक्ति की भारत मे समाप्ति हो गई। इधर क्लाइव का स्वास्थ्य खराब हो चला था, अतः सन १७६० के फरवरी मास मे उसे भारत छोड़ना पडा। उसने वडे वड़े काम कर दिखाए थे, पर अभी उसका सारा काम समाप्त नहीं हुआ था।

क्लाइव की अनुपस्थिति का समय-(१७६०-१७६५)-
कम्पनी ने अपनी सफल चालों से नवाव के अधिकारो को तो नष्ट कर दिया था पर वह शासन-भार अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं थी। अब अंग्रेज़ व्यापार ही मे ध्यान लगाना चाहते थे।

बुरे शासन का ज़माना

वे कहते थे कि व्यापार ही "हमारा इन देशो में वास्तविक उद्देश्य है।" वैसे कहने को तो वंगाल में नवाव का शासन था, परन्तु वास्तव मे शासन किसी का नहीं था। क्लाइव के वंगाल से रवाना होते ही चारों ओर अव्यवस्था, असतोष, अशांति और रिश्वत का जोर चलने लगा। मीर जाफर को एक तो इस दुर्दशा को ठीक करने का अधिकार ही प्राप्त नहीं था, पर यदि उसे यह अधिकार होता तो भी वह इस कार्य के लिए योग्य ही नहीं था। वड़ी वड़ी भेटों के कारण, जिन्हे वह क्लाइव और अन्य अफ़सरो को दिया करता था, उसकी आर्थिक दशा वड़ी खराब हो गई और शासन चलाने मे उसे वड़ी असुविधा होने लगी।

थोड़े ही सालों में कम्पनी के नौकर सौदागर से हाकिम वन गए थे। उनमे से कुछ ने तो मीर जाफ़र के गद्दी पर बैठते ही

कम्पनी के नौकरों की बढ़ती

बहुत-सी सम्पत्ति इकट्ठी कर ली थी और बाक़ी भी सब तरह के साधनों से अपनी आर्थिक दशा को उन्नत करने में लगे हुए थे। नया गवर्नर वैनिस्टार्ट तक इस मर्ज़ से नहीं बचा था, और यद्यपि उसे कम्पनी से १८,००० पौण्ड वार्षिक वेतन मिलता था, तथापि वह अपना निजी व्यापार भी चलाता था।

मीर क़ासिम को नवाब बनाया गया—नई नई असुविधाएं उत्पन्न होने लगी। कम्पनी का कोष खाली होगया था। उधर नवाब के सिपाही अपनी पिछली तनख्वाहें माग रहे थे। मीरज़ाफर के नाममात्र के प्रभु, नए मुग़ल सम्राट् शाहआलम ने नवाब पर चढ़ाई कर दी, परन्तु उसे वृटिश सेना से हार कर अंग्रेज़ो से सन्धि कर लेनी पड़ी।

बंगाल कौंसिल को धन की बड़ी आवश्यकता थी। अब मीरजाफ़र उनके लिए बेकार हो गया था। इसलिए उन्होंने, कुछ परिवर्तन करने की इच्छा से मीर जाफर के जमाई मीरक़ासिम को गद्दी पर बैठा दिया। इस सहायता के बदले मे मीर क़ासिम ने अंग्रेजो को बर्दवान, मिदनापुर और चिटागाव के ज़िले दे डाले।

यह नया नवाब नालायक नहीं था, और यदि उसे अवसर दिया जाता तो वह सुशासन भी क़ायम कर देता, परन्तु वह अपनी

मीर कासिम की परेशानियां

योग्यता के कारण ही अंग्रेजों की आखो में शीघ्र ही खटकने लगा। वे ऐसा कोई सुधार नहीं होने देना चाहते थे जो उनके रुपया पैदा करने के मार्ग

वांडिवाश में अंग्रेज़ों की जीत हुई और फरांसीसियों की शक्ति की भारत में समाप्ति हो गई। इधर क्लाइव का स्वास्थ्य खराब हो चला था, अतः सन १७६० के फरवरी मास में उसे भारत छोड़ना पड़ा। उसने बड़े बड़े काम कर दिखाए थे, पर अभी उसका सारा काम समाप्त नहीं हुआ था।

क्लाइव की अनुपस्थिति का समय--(१७६०-१७६५)- कम्पनी ने अपनी सफल चालों से नवाब के अधिकारों को तो नष्ट कर दिया था पर वह शासन-भार अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं थी। अब अंग्रेज़ व्यापार ही में ध्यान लगाना चाहते थे।

बुरे शासन का ज़माना

वे कहते थे कि व्यापार ही "हमारा इन देशों में वास्तविक उद्देश्य है।" वैसे कहने को तो बंगाल में नवाब का शासन था, परन्तु वास्तव में शासन किसी का नहीं था। क्लाइव के बंगाल से रवाना होते ही चारों ओर अव्यवस्था, असंतोष, अशांति और रिश्वत का जोर चलने लगा। मीर जाफर को एक तो इस दुर्दशा को ठीक करने का अधिकार ही प्राप्त नहीं था, पर यदि उसे यह अधिकार होता तो भी वह इस कार्य के लिए योग्य ही नहीं था। बड़ी बड़ी भेंटों के कारण, जिन्हें वह क्लाइव और अन्य अफ़सरों को दिया करता था, उसकी आर्थिक दशा बड़ी खराब हो गई और शासन चलाने में उसे बड़ी असुविधा होने लगी।

थोड़े ही सालों में कम्पनी के नौकर सौदागर से हाकिम बन गए थे। उनमें से कुछ ने तो मीर जाफ़र के गद्दी पर बैठते ही

कम्पनी के नौकरों की चढ़नी

बहुत-सी सम्पत्ति इकट्ठी कर ली थी और बाकी भी सब तरह के साधनों से अपनी आर्थिक दशा को उन्नत करने में लगे हुए थे। नया गवर्नर वैनिस्टार्ट तक इस मर्ज़ से नहीं बचा था, और यद्यपि उसे कम्पनी से १८,००० पौण्ड वार्षिक वेतन मिलता था, तथापि वह अपना निजी व्यापार भी चलाता था।

मीर कासिम को नवाब बनाया गया—नई नई असुविधाएं उत्पन्न होने लगीं। कम्पनी का कोष खाली होगया था। उधर नवाब के सिपाही अपनी पिछली तनख्वाहें मांग रहे थे। मीरजाफर के नाममात्र के प्रभु, नए मुग़ल सम्राट् शाहआलम ने नवाब पर चढ़ाई कर दी, परन्तु उसे बृटिश सेना से हार कर अंग्रेज़ों से सन्धि कर लेनी पड़ी।

बंगाल कौंसिल को धन की बड़ी आवश्यकता थी। अब मीर-जाफ़र उनके लिए बेकार हो गया था। इसलिए उन्होंने, कुछ परिवर्तन करने की इच्छा से मीर जाफर के जमाई मीरक़ासिम को गद्दी पर बैठा दिया। इस सहायता के बदले में मीर क़ासिम ने अंग्रेज़ों को बर्दवान, मिदनापुर और चिटागांव के ज़िले दे डाले।

मीर कासिम की परेशानियां

यह नया नवाब नालायक नहीं था, और यदि उसे अवसर दिया जाता तो वह सुशासन भी क़ायम कर देता, परन्तु वह अपनी योग्यता के कारण ही अंग्रेज़ों की आंखों में शीघ्र ही खटकने लगा। वे ऐसा कोई सुधार नहीं होने देना चाहते थे जो उनके रुपया पैदा करने के मार्ग

मे रुकावटें डाले । उन्होंने यह अपना अधिकार बताया कि वे बिना किसी प्रकारकी चुङ्गीके व्यापार करें यद्यपि नवाबकी प्रजाको चुङ्गी देनी पडती थी। एक ओर कम्पनी नवाब से उसकी रक्षा के लिए रक्खी गई सेनाके निर्वाहके लिए बडी रकमें माँगती और दूसरी ओर कम्पनी के नौकर आए दिन निराधार दावे पेश करते, जिनसे नवाब की आय में और भी कमी होती जाती और उसकी प्रजा को असुविधा होती । इस प्रकार का सिलसिला अधिक दिनों तक नहीं चल सकता था । नवाब ने हताश होकर अपनी राजधानी मुंगेर को हटा दी और यह घोषणा करदी कि सब व्यापारो पर से चुंगी हटा ली जाय । इससे सम्पूर्ण व्यापारियों का समान अधिकार हो गया और अंग्रेजों को बहुत नुकसान पहुंचा । अब युद्ध अनिवार्य था। अंग्रेजों ने पटना पर अधिकार कर लिया, पर मीर कासिम ने उस पर पुनः कब्जा कर लिया और वहाँ के सारे यूरोपियनों को क़ैद कर लिया । अंग्रेजों ने उस पर धावा किया और उसे कटवा और घेरिया की दो लडाइयों में हरा दिया । अब मीर क़ासिम का छिपा हुआ क्रोध बाहर निकल पडा और उसने पटना के अंग्रेजों का कत्लेआम करा दिया। इस आज्ञा का पालन नवाब के एक जर्मन कर्मचारी ने, जिसका उपनाम समरू था, बडी सख्ती के साथ किया। इस पर सन १७६३ में मीरक़ासिम को हमेशा के लिए गद्दी से उतार दिया गया और उसकी जगह मीरजाफर को पुन. नवाब बना दिया गया।

पटना का कत्लेआम

मीरजाफर से वचन ले लिया गया कि वह अंग्रेजों को बिना

किसी प्रकार के कर के व्यापार करने दे और मीर कासिम द्वारा उन्हे पहुँचाई गई सारी क्षतियों को पूरा कर दे। इधर मीरकासिम बङ्गाल से भागकर अवध के नवाब शुजाद्दौला के पास पहुँचा। वहां दिल्ली का मुग़ल सम्राट् शाह आलम भी था। इन तीनो ने एक साथ बङ्गाल की ओर कूच किया, पर इन्हें बक्सर में मेजर मुनरो ने बुरी तरह से हरा दिया। यह युद्ध पलासी के युद्ध से भी ज्यादा भीषण था, इसने सदा के लिए निर्णय कर दिया।

बक्सर की लड़ाई १७६४

पलासी से आरम्भ किया गया काम यहां समाप्त हुआ। नाम-मात्र के भारत सम्राट् ने विजेता को आत्मसमर्पण कर दिया। अवध का नवाब अपने देश को भाग गया। उसकी शक्ति इस समय बिल्कुल चूर्ण हो चुकी थी।

क्लाइव का बंगाल में दूसरा राज्य-प्रबन्ध— (१७६५—१७६७)—इधर बङ्गाल के कुशासन की खबर कम्पनी के संचालको के कानों मे पहुँच चुकी थी। उन्होने शीघ्र ही क्लाइव को (जो अब लार्ड क्लाइव हो गया था) बङ्गाल का गवर्नर बना कर, और कम्पनी के प्रबन्ध में सुधार करने का अधिकार देकर भारत को भेज दिया। वह मई सन् १७६५ मे इस देश मे पहुँच गया। उसके आने से पहले मीरजाफर मर गया था, और उसकी जगह उसका लड़का नवाब नजमुद्दौला गद्दी पर बैठ चुका था।

क्लाइव ने आने के साथ ही अपना काम शुरू कर दिया।

और अवध के नवाब के साथ सुलह की गई जिसके अनुसार नवाब को अवध का राज्य वापस मिल गया। पर इलाहाबाद और कोरा के इलाके बादशाह को दिए गए, और इस के बदले बादशाह ने कम्पनी को बङ्गाल बिहार और उडीसा की दीवानी का अधिकार दे दिया. जिसकी आय में से २६ लाख रुपया सालाना बादशाह को देना नियत किया गया।

दोहरा शासन

इस सन्धीके अनुसार कम्पनी के अधिकार मे सौंपे गए प्रदेश का शासन जिस प्रणाली पर चलने लगा, उसे दोहरा शासन (Dual system) कहते हैं। कम्पनी को दीवानी का अधिकार मिल जाने से अब नज़मुद्दौला कम्पनी का पेंशनमात्र ही रह गयाथा। पर क्लाइव ने भारतीय शासन का रंग रूप बनाये रक्खा। कम्पनी को इन सूबो पर शासन करने का जो अधिकार मिला था, उसका उपयोग स्वयं करने की बजाय उसने बहुत से महकमे नायब नाज़िमों के सुपुर्द कर दिये। लगान, कर आदि को एकत्र करने का कार्य, दीवानी, फौजदारी और पुलीस के महकमे—सब नायबों के ही हाथों में थे, जिन में कम्पनी बहुत कम दखल देती थी। शासन-कार्य्य चलाने के लिये नवाब को ५३ लाख रुपये दिए जाते थे। दोहरा शासन इस बात मे था कि यद्यपि देश की असली शासक कम्पनी ही बन चुकी थी, पर वह अपने सारे कर्तव्यों का पालन नहीं करना चाहती थी और एजन्सी से काम चला रही थी।

क्लाइव का स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया और वह

में इङ्गलैंड को रवाना हो गया । कुछ दिनों तक वह लण्डन बडी शान के साथ रहा; पर उस के शत्रुओं ने उस पर भारत दुराचरण करने का अभियोग लगाया । उसने अपनी सफ़ाई पेश की और अन्त में उसे हाउस आफ़ कामन्स ने निर्दोष ठहराया पर इस तरह लांछित होकर वह अधिक दिनों तक जी न सका और २ नवम्बर १७७४ में, पचास साल की उम्र में उसने आत्महत्या कर ली ।

क्लाइव का कार्य्य—*कहा जाता है कि क्लाइव भारतवर्ष में* अंग्रेज़ों के इतिहास का संक्षिप्त रूप था—पहले व्यापारी, फिर सिपाही, और अन्त में शासक । जब वह छोटी उम्र का था तो उसके मां बाप उससे परेशान रहते थे और उसे एक आवारागर्द और नटखटी लड़का समझते थे । जब उसे कम्पनी में क्लार्क की जगह मिलने लगी तो वे बहुत प्रसन्न हुए और तत्काल ही उसे भारत को भेज दिया । वे क्या जानते थे कि यही नटखटी लड़का भारत मे वृटिश साम्राज्य का स्थापक होगा ।

कम्पनी का साधारण क्लर्क

क्लाइव ने भारत में आकर शीघ्र ही क़लम रख कर तलवार उठा ली और करनाटक की दूसरी लड़ाई मे यह सिद्ध हो गया कि वह बड़ा योग्य सेनापति है । उसे युद्ध-कला से किसी तरह का परिचय नहीं था, पर अर्काट की लड़ाई मे उसने जो ढङ्ग अपनाये, युद्ध-विद्या के आचार्यों को भी शायद वही ढंग अपनाने पड़ते । पलासी से उसकी प्रसिद्धि

सैनिक

और भी बढ़ी और उसे इङ्गलैण्ड के महामन्त्री पिट ने "दैवी सेनापति" की उपाधि दी। उस में आश्चर्य-जनक प्रतिभा और स्वाभाविक शक्ति मालूम पडती थी और उसे देखते ही लोगों में विश्वास उत्पन्न हो जाता था। अर्काट और पलासी लड़ाइयो मे उसे अपार सेना के विरुद्ध लड़ना पड़ा, पर—जैसा हम इतिहास में प्रायः देखते हैं—क्लाइव जैसे आदमियों के लिये सेना की संख्या कोई विशेष महत्वपूर्ण बात नहीं होती।

अर्काट और पलासी

पर अभी क्लाइव को एक कार्य भी करना था—यह काम शासन-प्रबन्धक का था। बङ्गाल की दूसरी गवर्नरी के अवसर पर उसकी इस विषय की योग्यता भी पूरी तरह सिद्ध हो गई। जिस समय वह बक्सर के युद्ध के बाद भारत में आया, तो राज्य बढाने में बृटिश सेना के मार्ग मे कोई रुकावट नहीं थी। पर क्लाइव ने जान लिया कि "आगे बढ़ना एक बडी फजूल आकांक्षा है।" बाद के इतिहास से मालूम हो जाता है कि उसका निर्णय कितना ठीक था। इसके इलावा उसके नागरिक और सैनिक सुधार, देशी शासकों से सम्बन्ध स्थापित करने के ढङ्ग और दोहरा शासन—ये सब बातें यद्यपि बहुत ही अपूर्ण और काफी अंश तक दोषपूर्ण भी थीं, तथापि यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि भविष्यमे उन्हीं के द्वारा बङ्गाल मे सुनियन्त्रित शासन की नींव पडी। इस काम मे ने बडी धीरता के साथ अनेक असुविधाओं का सामना

शासन-प्रबन्धक

यद्यपि क्लाइव की वीरता, और किसी हद तक उसका शासन-कौशल देखकर हृदय में उसके लिए स्वय ही प्रशंसा के भाव आ जाते हैं, तथापि उसके जीवन की अनेक ऐसी घटनाएं भी हैं, जिनके लिए हम उसे धिक्कारने को मजबूर हो जाते हैं, और जिनके कारण उसकी यादगार सदा के लिए कलंकित हो जाती हैं। चाहे कितनी ही सफ़ाइयां पेश की जॉय, तथापि वह नकली प्रतिज्ञा-पत्र वाला मामला उसकी यादगार पर काला धब्बा ही बना रहेगा। यह कहने से कि जिस पुरुष ने उस के साथ सहज व्यवहार नहीं किया, वह भी उसके साथ सहज व्यवहार करने को वाध्य नहीं था, यह लाञ्छन धुल नहीं जाता। वह धन प्राप्त करने में अच्छे बुरे ढङ्ग का ख्याल नहीं करता था. यह इस बात से अच्छी तरह साबित हो जाता है कि वह नज़रें लिया करता था और उसने अपने निजी व्यवहार के लिए मीरजाफ़र से एक जागीर भी स्वीकार की थी। इन सब दुर्वलताओं के होते हुए भी, उसने जो कुछ किया, उसमें इतना महत्व है कि लार्ड मेकाले का यह कथन हमें अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं जंचता कि "ब्रिटेन ने इससे वड़ा पुरुष—चाहे वह शास्त्र में हो या कौंसिल में—अभी तक शायद ही पैदा किया हो।"

कुछ बुरे कार्य

सन १७६७ से १७७२ तक—बङ्गाल का दूसरा गवर्नर वारेन हेस्टिंग्ज़ था, पर उसकी नियुक्ति सन १७७२ में हुई थी। इस लिए हमें हेस्टिंग्ज से पहले क्लाइव के वाद के पांच सालों का वर्णन कर देना चाहिए। इस ज़माने में व्रेलेस्ट

बंगाल

और कार्टियर की अधीनता मे दोहरे शासन की बुराइयां और असफलता अच्छी तरह मालूम हो गई। नवाब पर ज़िम्मेदारियों का भार तो रख दिया गया था, परन्तु उसे अधिकार नहीं दिए गए थे। उधर कम्पनी के पास अधिकार तो थे, पर वह अपने पर कोई ज़िम्मेवारी नहीं लेना चाहती थी। नवाब शासन कर नहीं सकता था, कम्पनी करना नहीं चाहती थी। इस प्रकार लोगो को उन हिन्दुस्तानी और यूरोपियन अफ़सरों की दया का भरोसा ही एकमात्र आश्रय-स्थान था, जो निजी व्यापार में लगे रहते थे और लोगो की भलाई का कभी ख्याल नहीं करते थे। सन् १७६९—१७७० के वर्ष मे बंगाल मे भयंकर अकाल पडा। यह अनुमान किया गया है कि बंगाल की कुल आबादी का एक तिहाई हिस्सा (लगभग एक करोड आदमी) इस अकाल मे भूख और रोग से छटपटा कर मर गये और खेती वाली ज़मीन का एक तिहाई हिस्सा बेकार पडा रहा। उधर कम्पनी के अधिकारियो ने लोगो के कष्ट को दूर करने का प्रयत्न करने के बजाय खूब चावल खरीदे और ऊँची कीमत पर बेच कर बडा मुनाफ़ा उठाया।

उत्तर भारत

इधर उत्तर भारत मे मराठों की लूटमार का आतंक बुरी तरह छाया हुआ था। पानीपत की लडाई की हार के बाद मराठे अब संभल चले थे। महादजी सिंधिया ने, जो उस समय मराठों में सब ज्यादा ताक़तवर था, शाह आलम को गद्दी पर बैठाने का जिम्मा अपने ऊपर लिया

और यह इस शर्त पर कि वह उसके संरक्षण में ही राज्य करे। यह लालच काम कर गया और मुग़ल बादशाह ने बृटिश संरक्षण छोड़ दिया। सन १७७१ में उसे बड़ी धूमधाम के साथ दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया गया। महादजी उसका संरक्षक बना—उसे तो जेलर कहना चाहिए, क्योंकि बादशाह उसके हाथों में क़ैद-सा था।

दक्षिण में हैदरअली का उत्थान

दक्षिण भारत मे नई अशांति उठ खडी हुई थी अंग्रेज़ों का मित्र मुहम्मदअली केवल नाममात्र का नवाब था। अब दक्षिण मे तीन शक्तियां ज़ोर पकडने लगी थीं। इनमे एक मैसूर का नवाब हैदरअली भी था, जिसने हिन्दू राजा को गद्दी से उतार कर राज्य पर अधिकार कर लिया था। यह हिन्दू राज्य सन १५६५ में विजयनगर साम्राज्य के विनाश के बाद कायम हुआ था। दूसरा भय मराठों की सम्मिलित शक्ति का था। उधर निज़ाम भी अपने काफी बड़े राज्य को और अधिक बढ़ानेकी कोशिश कर रहा था। वैसे कहने को तो वह अंग्रेज़ों का मित्र था पर वह चुपचाप हैदर-अली और मराठों से अन्दर ही अन्दर गुप्त सम्बन्ध भी स्थापित करता जाता था।

मैसूर की पहली लड़ाई (१७६७—१७६९)—हैदर-अली की बढ़ती हुई ताकत से और शक्तियों को ईर्ष्या हुई और उसके विरुद्ध अंग्रेज़, मराठे और निज़ाम तीनों मिल गए। पर हैदरअली ने मराठों को रुपया देकर

कारण

संतुष्ट कर लिया और निज़ाम को भी अंग्रेज़ों का साथ न देकर अपना साथ देने पर सहमत कर लिया। इन मित्र सेनाओं को कर्नल स्मिथ ने चंगामा और विनोमली मे हरा दिया। अब निज़ाम ने हैदरअली का साथ छोड़ दिया और अंग्रेज़ों के साथ मेल कर लिया।

घटनाएँ

परन्तु मद्रास में अयोग्य अफ़सरों का युद्ध-प्रबन्ध इतना दोषपूर्ण था कि सन १७६९ मे हैदरअली कर्नाटक को रौंद कर मद्रास जा पहुँचा और वहां उसी को शर्तों पर संधि स्थापित होगई। विजित प्रदेशों को वापिस कर दिया गया और आत्मरक्षा के युद्ध मे एक दूसरे की सहायता करना निश्चित किया।

परिणाम

प्रश्न

१. तुम क्लाइव के प्रारम्भिक जीवन के बारे में क्या जानते हो? उसके बंगाल के पहले और दूसरे शासन प्रवन्ध का संक्षेप में वर्णन करो। इस बात की चर्चा करो कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित करने वाला वास्तव म वही था।

२. क्लाइव भारत में अंग्रेजों के इतिहास का संक्षिप्त रूप है, इसे साबित करो।

३. निम्नलिखित घटनाओं का राजनीतिक महत्त्व क्या है?

(१) पलासी का युद्ध

(२) बक्सर का युद्ध

(३) इलाहाबाद की सन्धि

की कौंसिल का सदस्य बन कर आया। सन् १७७२ में क्लाइव के बाद वह बङ्गाल का गवर्नर बनाया गया। कम्पनी के डाइरेक्टर उस पर बड़ा विश्वास करते थे और उसकी योग्यता और आचरण का बड़ा आदर करते थे।

गवर्नर की हैसियत से—जिन दिनों हेस्टिंग्ज़ को गवर्नर बनाया गया, उन दिनों बंगाल में घोर अकाल फैला हुआ था। इस पर दोहरे शासन ने लोगों को और भी तबाह कर रक्खा था। पुराने कुशासन की सारी बातें व्यवहार में आरही थीं। जिन निरीक्षकों को मालगुज़ारी के हिन्दुस्तानी अफ़सरों के हिसाब किताब की जाच करने के लिये मुकर्रर किया जाता था, वे इस देश की भाषा और रहन सहन से अनभिज्ञ होते थे और इन हिन्दुस्तानी अफसरों के हाथों में नाचते रहते थे। लोगो पर जुल्म किया जाता और कम्पनी के हिसाब मे भी बेईमानी की जाती थी। न्याय और शासन-प्रबन्ध के महकमों मे बड़ी गड़बड़ थी। उसका सर्वथा नवीन इन्तज़ाम करने की ज़रूरत थी। जिस समय हेस्टिंग्ज़ गवर्नर बना, शासन की ऐसी ही घोर दुर्दशा थी।

शासन संबंधी असुविधाएँ

हेस्टिंग्ज़ के सुधार—कम्पनी ने दीवान की हैसियत से काम करने का [illegible] कर ही लिया था, अतः अब मालगुज़ारी [illegible] से कलकत्ते के [illegible] कर दिया गया। [illegible] कर तथा माल-

मालगुज़ारी बोर्ड आफ़ [illegible]

गुजारी इकट्ठी करने का काम अंग्रेज़ अफ़सरों को सौंप दिया गया, जिन्हें कलैक्टर कहा जाता था। वारेन हेस्टिंग्ज ने मालगुज़ारी के पंचवार्षिक बन्दोबस्त का ढङ्ग चलाया। खेती करने का पट्टा सबसे ऊँची बोली बोलने वाले को दिया जाने लगा।

प्रत्येक जिले मे दीवानी और फ़ौजदारी अदालतें कायम की गईं। कलैक्टर के सुपुर्द सिविल-विधान का काम सौंपा गया और फ़ौजदारी अदालतो मे हिन्दुस्तानी ही काम करते रहे। हेस्टिंग्ज़ ने कलकत्ते में दीवानी मुक़दमों के लिये सदर दीवानी अदालत और फौज़दारी के मुकदमो के लिये सदर निज़ामत अदालत नाम की। दो सबसे बड़ी अदालतें कायम करके न्याय की सुव्यवस्था की नींव डाली। उसकी देख-रेख मे हिन्दू और मुसलमान-विधान भी बनाए गए।

न्याय विभाग

डाइरेक्टरों की आज्ञानुसार हेस्टिंग्ज़ ने बंगाल के नवाब के लड़के की वृत्ति को आधा करके कम्पनी के व्यय मे बचत करनी शुरू की। शाहआलम मराठों के साथ मिल ही चुका था, इसलिए वारेन हेस्टिंग्ज ने उसे २६ लाख रुपयोका कर देना बन्द कर दिया। कम्पनी का कथन था कि वह उस कर को देने के लिए तैयार नहीं, जो मराठो की जेबोमे जाकर उनकी शक्ति बढ़ाए। बादशाह से इलाहाबाद और कोटा के ज़िले वापस लेकर उन्हे पचास लाख रुपये में शुजाउद्दौला को दे दिया गया। इसी सम्बन्ध मे नवाब ने हेस्टिंग्ज़ को रुहेलो के विरुद्ध किए जा रहे युद्ध मे हस्तक्षेप करने का मौका दिया और कम्पनी ने इस युद्ध मे नवाब को जो मदद की, उसके बदले मे कम्पनी को चालीस लाख

बचत

रुपया दिया गया।

रुहेलों की लड़ाई—इससे कुछ ही समय पहले अफ़गान रुधिर की रुहेला नामी जंगली जाति रुहेलखण्ड में आ बसी थी। मराठों के प्रतिदिन के धावों से घबरा कर रुहेला सरदारों ने नवाब शुजाउद्दौला से मदद मांगी और इसके बदले में चालीस लाख रुपया देने का वचन दिया। सन् १७७३ मे मराठों की सेना ने रुहेलखण्ड पर हमला किया, पर अवध की फौजों से डर कर वह बिना लड़े ही वापस लौट गई। शुजाउद्दौला का काम समाप्त हो गया और उसने रुहेलों से वायदे के चालीस लाख रुपये मांगे, परन्तु उसे कुछ न दिया गया। इस पर बदला लेने के लिए नवाब ने अंग्रेजों से मदद मांगी। उसने सेना का सारा खर्च स्वयं उठाने का वचन दिया और वे चालीस लाख रुपये भी उन्हीं को देने का वायदा किया। हेस्टिंग्ज इस मामले में हिस्सा लेने के लिए कुछ विशेष उत्सुक नहीं था, पर वह नवाब को नाराज़ भी नहीं करना चाहता था। उसने नवाब की सहायता के लिए एक सेना भेज दी। रुहेलों को हरा दिया गया। नवाब की सेना ने, जिसे लड़ने भिड़ने से कोई खास प्रयोजन नहीं था, कुछ गांवों को आग लगा दी और कुछ लूटमार भी की। इस विजय के पश्चात् रुहेलखण्ड को अवध में मिला दिया गया।

हेस्टिंग्ज ने रुहेलों के सम्बन्ध में जो नीति ग्रहण की थी, उसकी तीव्र आलोचना की गई है, और वह आलोचना किसी हद तक ठीक

भी है। यह कार्य सचमुच अनुचित था, क्योंकि
आलोचना
हेस्टिंग्ज़ ने, रुहेलों से कम्पनी का किसी किस्म का झगड़ा न होने पर भी, बिना किसी कारण के उन्हें कुचलने में मदद दी। परन्तु इस मे हेस्टिंग्ज़ का जो उद्देश था, वह भी हमे न भूलना चाहिए। वह समझता था कि यदि रुहेलों को एक अन्य शक्ति के अधीन कर दिया जायगा तो ब्रिटिश राज्य निष्कण्टक हो जायगा। इसके अतिरिक्त उसे इस युद्ध द्वारा कम्पनी की आर्थिक दशा सुधारने का भी मौका मिला, जो उस समय बहुत खराब थी।

जिस समय भारत में ये घटनाएं हो रही थीं, ब्रिटिश पार्लियामेंट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मामले मे हाथ डालना अपना कर्तव्य समझा। कम्पनी के कुशासन की
रेगूलेटिंग
ऐक्ट १७७१
खबर इंगलैंड मे भी जा पहुंची थी और उसके प्रति लोगो में घृणा-सी फैलगई थी। जो लोग अपनी किस्मत जगा कर बङ्गाल से इङ्गलैंड वापिस आते थे, उनकी खुशहाली लोगों की नज़रों से छिपी न रहती थी। दूसरी ओर कम्पनी की अपनी आर्थिक हालत अच्छी न थी। उसे भारत के विभिन्न प्रान्तों मे अपनी सेनाएँ रखने के लिए बाध्य होना पड़ता था। कम्पनी के कर्मचारी कम्पनी के हित की अपेक्षा अपने नफ़े का अधिक ख्याल रखते थे। जिस समय कम्पनी के डाइरैक्टरो ने इङ्गलैंड के प्रधान मन्त्री लार्ड नार्थलिाफ़ से सन १७७० में दस लाख पाउण्ड उधार मांगे और कहा कि उनके दिवाले अपना

काम ही नहीं चला सकते, तो सनसनी-सी फैल गई। पार्लियामेंट ने कम्पनी के ऊपर नियन्त्रण रखना अपना कर्तव्य समझा। वह अपने कुप्रबन्ध से ब्रिटेन के नाम को कलंकित कर रही थी। इस लिए पार्लियामेंट ने सन् १७७३ मे एक ऐक्ट पास किया, जिसका नाम था रेगूलेटिंग ऐक्ट, क्योंकि यह भारत की सरकार को नियमित करता था। इस ऐक्ट के अनुसार निश्चय किया गया कि—

(१) कम्पनी की प्रबन्ध-सम्बन्धी और सैनिक बातो से सम्बन्ध रखने वाला सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार ब्रिटिश केबिनेट (मन्त्रि मण्डल) या सम्राट् के सामने मंजूरी के लिए पेश किया जाया करे।

(२) बङ्गाल के लिए एक गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया और उसकी सहायता के लिए चार सदस्यो की एक कौंसिल बनाई गई। इसका बहुमत गवर्नर जनरल के लिए मान्य था। गवर्नर जनरल को एक साधारण और एक अतिरिक्त (कास्टिंग) वोट देने का अधिकार दिया गया।

(३) गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल को अन्य प्रेसीडेन्सियों के ऊपर अन्य रियासतों के सम्बन्ध मे शासनाधिकार दिया गया।

(४) कलकत्ते मे एक सुप्रीम कोर्ट स्थापित किया गया जिस मे एक चीफ़ जस्टिस और हाईकोर्ट के साधारण जज नियुक्त किए गए।

(५) कम्पनी का कोई शासन विभाग का या फ़ौजी कर्मचारी

किसी देशी राजा या नवाब से अथवा उसके किसी एजेण्ट के द्वारा कोई भेंट स्वीकार नहीं कर सकता था और न वह किसी तरह का व्यापार ही कर सकता था।

ऐक्ट के दोष—यह ऐक्ट केवल आधी कमी ही पूरी करता था और इसकी कई बातें स्पष्ट नही थीं। इस ऐक्ट मे सुप्रीम कोर्ट के कर्तव्यों का निर्णय नहीं किया गया था न इस मे सुप्रीम-कोर्ट के कौंसिलों से सम्बन्ध का ही कुछ जिक्र था। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही कोर्ट और कौन्सिल मे झगडा उठ खड़ा हुआ। बङ्गाल कौन्सिल का बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सियो पर कोई शासनाधिकार नहीं था और वे अपना प्रबन्ध आप अच्छी तरह कर सकती थीं। सब से बुरी बात यह थी कि कौन्सिल के सदस्य अपना गुट्ट बना कर गवर्नर-जनरल के काम मे रुकावटे खड़ी कर सकते थे। पर ये सब दोष होते हुए भी ऐक्ट ने महत्वपूर्ण कार्य किया और भारत मे नई शासन व्यवस्था की नींव डाली।

हेस्टिंग्ज के मार्ग में कठिनाइयां

हेस्टिंग्ज गवर्नर जनरल की हैसियत से—रेगूलेटिंग ऐक्ट सन १७७४ से व्यवहार मे आया और वारन हेस्टिंग्ज को पहला गवर्नर जनरल बनाया गया। उसकी कौंसिल मे फ्रांसिस, क्लेवरिंग, मान्सन और बारवल नामक चार व्यक्ति रक्खे गए। सुप्रीम कोर्ट का पहला चीफ़ जस्टिस सर एलीजाह इम्पे बनाया गया। कौन्सिल के सदस्यो मे से पहले तीन अंग्रेज हेस्टिंग्ज की जगह पर बहुत दिनो से नजर गड़ाए बैठे थे और ऐसा मालूम

होता था कि वे कौन्सल में गवर्नर-जनरल को सहायता देने के लिए नहीं, अपितु उसके रास्ते में रुकावटें डालने के लिए आए हैं। उन्होने उसके विरुद्ध एक प्रकार का गुट्ट-सा तैयार कर लिया और बहुमत उनके पक्ष में होने के कारण हेस्टिंग्ज़ बिल्कुल असहाय हो गया। रुहेला युद्ध मे हेस्टिंग्ज़ ने जो आचरण किया था, कौन्सिल ने उसकी निन्दा की और हेस्टिंग्ज़ के घोर विरोध करते रहने पर भी शुजाउद्दौला के उत्तराधिकारी (जो सन १७७५ में मर गया) से एक नई सन्धि कर ली जिसके अनुसार बनारस अंग्रेज़ों को मिल गया।

जब आपस के इन झगडों की खबर फैल गई तो बहुत से लोगों ने हेस्टिंग्ज पर अभियोग लगाने शुरू कर दिए। सब से अधिक भीषण अभियोग एक ऊँचे ओहदे वाले प्रभावशाली ब्राह्मण, महाराज नन्दकुमार की ओर से लगाया गया। उसने हेस्टिंग्ज पर रिश्वत लेने

नन्द कुमार

और नौकरिया बेचने का इल्ज़ाम लगाया। कौन्सिल ने हेस्टिंग्ज से वह सब रुपया खजाने में जमा करने को कहा, पर हेस्टिंग्ज ने अपना विचार अपनी ही कौंसिल मे कराने से इन्कार कर दिया और नन्दकुमार पर षड्यन्त्र का मुकदमा चलाया। जिन दिनों यह मुकदमा चल रहा था, उन्ही दिनों मोहनलाल नामक एक आदमी ने नन्दकुमार पर जालसाजी का इल्ज़ाम लगा दिया। इस अभिप्राय का विचार सर इलीजाह इम्पे ने किया। उसने नन्दकुमार को दोषी ठहराया और शीघ्र ही उसे फांसी दे दी गई। इस पर सब ओर

और भी सनसनी बढी। इम्पे हेस्टिंग्ज़ का मित्र था, इस लिये कहा जाने लगा कि हेस्टिंग्ज़ ने किसी न किसी तरह अपने शत्रु से छुटकारा पा लिया है। वास्तव मे इस मामले की सत्यता जान सकने के लिये कोई पुष्ट प्रमाण मौजूद नहीं हैं। जो कुछ भी हो, यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि अंग्रेज़ी कानून, जिसमें जाल-साज़ी की सज़ा फांसी थी, भारत में लागू नहीं होना चाहिए था। हेस्टिंग्ज़ की इस कार्रवाई से उसका रोब फिर वैसा ही हो गया और उसके विरुद्ध कोई इल्ज़ाम नहीं लगाया गया।

शीघ्र ही ऐसा समय आया, जब हेस्टिंग्ज़ एक बार पुनः बंगाल का स्वामी बन गया। मान्सन मर गया। अब हेस्टिंग्ज़ अपने निजी वोट, एक कास्टिंग वोट और अपने पुराने सहायक बारवैल के वोट से अपने विरोधियो की एक न चलने देता था। फ्रॉंसिस ने अपना प्रयत्न बराबर जारी रक्खा, पर वह अपनी अल्पसंख्या के कारण कुछ न कर सका।

कौन्सिल की एक बैठक मे हेस्टिंग्ज़ ने फ्रॉसिस पर लांछन लगाया कि वह सचाई और मान दोनों से वंचित है। इस पर फ्रॉंसिस ने उसे द्वन्द्वयुद्ध को चुनौती दी और हेस्टिंग्ज ने मूर्खतावश यह चुनौती स्वीकार कर ली। द्वन्द्व-युद्ध में फ्रॉंसिस घायल हुआ। इसके बाद ही वह इङ्गलैंड में वापस चला गया और पार्लियामेंट में अपने शत्रु हेस्टिंग्ज़ पर बराबर इल्ज़ाम लगाता रहा। परन्तु इसके बाद जब तक हेस्टिंग्ज़ भारत में रहा, उसके शत्रु यहां उसका कुछ

फ्रांसिस का पदत्याग

न बिगाड़ सके।

मराठों की पहली लड़ाई (१७७५-८२)—हम पहले ही कह चुके हैं कि पानीपत की तीसरी लड़ाई के भयंकर आघात के बाद मराठों ने अपनी ताकत पुनः यथापूर्वक कर ली थी। चौथे पेशवा माधवराव ने बड़ी योग्यता के साथ शासन किया और निज़ाम तथा हैदरअली को युद्धों मे कई बार हराया। इस बात का भी ज़िक्र आ चुका है कि महादजी सिंधिया ने किस प्रकार दिल्ली और आगरे मे कामयाबी हासिल की थी। इसी बीच मे माधवराव अचानक मर गया और उसकी जगह नारायणराव गद्दी पर बैठा, जिसे साल भर के भीतर ही उसके चचा राघोबा के पक्षवालों ने मार डाला। राघोबा पेशवा बनना चाहता था, पर उसका विरोध किया गया और उस समय के एक अत्यन्त सुयोग्य मराठे नाना फड़नवीस ने नारायणराव के पुत्र का समर्थन किया। इस तरह मुँह की खाकर राघोबा ने बम्बई सरकार से सहायता मांगी और सूरत मे उसके साथ सन्धि करके उसकी सहायता के मूल्य-स्वरूप साल्सट और बसीन देने का वचन दिया। बंगाल कौन्सिल ने यह कार्य नापसन्द किया। उसे परिवर्तन का पूर्ण अधिकार था ही, इस लिए उसने पुरन्दर मे नाना फडनवीस के साथ संधी की जिसके अनुसार अंग्रेज़ राघोबा का साथ इस शर्त पर छोडने को राज़ी हुए कि साल्सट पर उन्हीं का अधिकार रहेगा। यह नई सन्धी अभी कठिनता से समाप्त हुई

सूरत की सन्धि,१७७५

पुरन्दर की सन्धि

होगी कि कम्पनी के डाइरेक्टरों का पत्र आया, जिसमे उन्होंने सूरत की सन्धी को पसन्द किया।

अब राघोबा के साथ फिर से मित्रता स्थापित की गई और पूना की ओर एक सेना रवाना की गई, जिसे तेलगांव के पास मराठा सेना ने हरा दिया और उसे अपमानजनक शर्तें मानने को मजबूर कर दिया। इसके अनुसार अंग्रेज़ो को लिए हुए प्रदेश वापिस करने और राघोवा को मराठो के हाथो में सौंप देने को राज़ी होना पडा। पर बाद मे डाइरेक्टरो ने इस सन्धि को अस्वीकार कर दिया। उन्होने कहा कि अपनी सरकार की आज्ञा बिना सेना के अफ़सरों को इस तरह की सन्धि करने का कोई अधिकार नहीं था। कर्नल गोडर्ड ने बङ्गाल से आकर अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया और कप्तान पोपहम ने ग्वालियर के मज़बूत किले पर आक्रमण किया। आगे चल कर लड़ाई ने और भी भयंकर स्वरूप धारण कर लिया। बात यह हुई कि लगभग सम्पूर्ण मराठे राजाओ, निजाम और हैदरअली ने अंग्रेजों की शक्ति को नष्ट करने के लिए सन १७७९ मे एक गुट बना लिया था। हेस्टिग्ज ने इस नाजुक हालत का सामना बडी धीरता और चतुरता के साथ किया और यह गुट कुछ विशेष सफलता प्राप्त न कर सका।

वारेन हेस्टिंग्ज इस युद्ध से उकता-सा चला था। वास्तव में यह युद्ध उसकी इच्छा के प्रतिकूल ही लड़ा जा रहा था और इस का कम्पनी की आर्थिक हालत पर बहुत बुरा असर पड़ रहा था।

कम्पनी की हैदरअली के साथ दुश्मनी दिन पर दिन बढ़ती जाती थी, इसलिए वह भी मराठों के साथ मेल करना चाहता था।

सल्वाई की सन्धि—फलतः महादजी सिंधिया के द्वारा सन्धि करली गई और उस पर सल्वाई में हस्ताक्षर हुए। अँग्रेज़ों को साल्सट का इलाक़ा दिया गया और माधोराव नारायण को पेशवा मान लिया गया। राघोबा के लिए तीन लाख रुपये प्रति वर्ष की पेन्शन नियत हो गई। इस सन्धि के बाद २० वर्षों तक मराठों और अंग्रेजों मे मित्रता बनी रही।

मैसूर की दूसरी लड़ाई (१७८०-१७८४)—सन १७७९ का गुट तो टूट गया पर हैदरअली उसी तरह अंग्रेजों का दुश्मन बना रहा। सन १७६९ में मद्रास की सरकार ने हैदरअली को उसके दुश्मनों से रक्षा करने का वचन दिया था, पर वह वचन पूरा न किया गया। इस वायदे के कुछ ही दिनों बाद जब मराठों ने उसके राज्य पर चढ़ाई की, तो हैदरअली को सहायता देने से मद्रास सरकार ने साफ़ इन्कार कर दिया था। हैदरअली को वह वेइज्ज़ती याद थी, परन्तु वह मौके की ताक मे था। सन १७७९ में अंगरेज़ों और फ़रांसीसियों मे यूरोप में लड़ाई छिड गई और अंगरेज़ों ने दक्षिण भारत में उनके सारे प्रदेशों पर अधिकार कर लिया, जिसमें माही भी शामिल था। हैदरअली इस बन्दरगाह की तरफ पहले ही से बहुत आशा लगाए बैठा था, क्योंकि फरांसीसियों ने उससे

कारण

वायदा किया था कि वे वहां से उसके पास युद्ध की सामग्री भेजेंगे। उसने माही को बचाने का घोर प्रयत्न किया, परन्तु वह असफल रहा। अब मौका आ गया था, अतः हैदरअली ने अंगरेज़ों के साथ युद्ध ठान लिया।

आरम्भ में हैदरअली की जीत हुई। अपनी ८०,००० सेना लेकर वह करनाटक पर जा चढ़ा। वह जिधर से निकला, उधर ही से विनाश का झाड़ू फेरता गया। कर्नल बेली को उसका सामना करने के लिये भेजा गया था, पर उसे अपनी सेना सहित आत्मसमर्पण करना पड़ा। बक्सर की लड़ाई के प्रसिद्ध वीर मुनरों ने भी अपनी तोपें एक तालाब मे फेंक दीं और वह मद्रास को भाग गया। हैदरअली की सेना ने मद्रास तक मैदान साफ़ कर दिया। लगभग सारा दक्षिणी भारत हैदरअली के हाथ में चला गया।

घटनाएं

इस समय हेस्टिंग्ज़ ने बड़ी चतुरता से काम लिया। उसने दक्षिणी भारत की तीनो शक्तियो के गुट्ट को तोड दिया। निज़ाम को फोड़ कर उसने अपनी ओर मिला लिया और मराठों ने मेल की बातचीत आरम्भ कर दी, जिससे वह निश्चिन्त हो कर कर्नाटक की ओर ध्यान दे सके। मराठों की लडाई कुछ समय पहले महत्वपूर्ण अवश्य थी, पर इस समय उसे गौण स्थान दे दिया गया था। वांडीवाश के विजेता सर आयरकूट को बुलाया गया और उसे हैदरअली के विरुद्ध लडने वाली सेना का सेनापति

पोर्टो नोवो

बना दिया गया। उसने हैदरअली को सन् १७८
मे पोर्टो नोवो, पोलीलूर और सोलींघर
लड़ाइयों मे हरा दिया।

परन्तु कुछ समय बीतते ही हैदरअली फिर से ताकतव
हो उठा। उसके पुत्र टीपू को तंजौर के इलाके मे बड़ी सफलत
मिली थी। उसने दो हज़ार अंग्रेज़ सिपाहियों की सेना को घे
कर नष्ट कर डाला था। जब उसने उसी साल एक फ्रैंच जहाज
को सफरन की अधीनता मे आते देखा तो उसको
बड़ी आशा हुई। मगर भाग्य से इन्हीं
दिनों हैदरअली मर गया और अंग्रेजों ने छुट-
कारा-सा पाया।

हैदरअली की मृत्यु

तथापि युद्ध का अन्त अभी नही हुआ था। टीपू को फ्रांस
से युद्ध की सामग्री बराबर मिल रही थी, अतः उसने भी लड़ाई
करना बराबर जारी रक्खा। परन्तु दूसरे वर्ष
यूरोप मे शान्ति हो गई और टीपू को अपने
पैरों पर खड़ा होना पडा। हेस्टिंग्ज़ उसे हराने
के लिये सब तरह की कोशिशें कर रहा था, परन्तु मद्रास सरकार
ने सन् १७८४ मे उससे मगलोर मे सन्धी कर ली। सन्धी की
शर्तों के अनुसार दोनों पक्षों ने युद्ध के क़ैदियों और एक दूसरे
से जीते हुए प्रदेशो को वापिस सौंप दिया।

मंगलोर की सन्धि, १७८४

हैदरअली—यहाँ अंग्रेजों के उस घोर शत्रु के कार्य-कलाप

पर भी दृष्टि डालना उचित होगा जो अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम पचास वर्षों मे अंग्रेज़ो के लिए सब से बड़ी आफ़त था। हैदरअली किसी बादशाह के वंश मे से नहीं था, उसका पिता मालगुज़ारी का एक साधारण कर्मचारी था। उसे किसी तरह की शिक्षा नहीं मिली थी। वह वर्णमाला तक भी नही पढ़ सकता था। पर वह बहुत बड़ा वीर और योद्धा था। प्रारम्भ मे मैसूर की सेना के सिपाहियो मे भरती होकर क्रमशः वह सेनापति बन गया। फिर एक राज्य का मालिक और अन्त मे मैसूर का सुल्तान बन गया।

हैदरअली ने जो कुछ हासिल किया, उस पर अपनी बुद्धिमत्ता की बदौलत उसने बराबर अधिकार भी बनाए रक्खा। वह सुयोग्य शासक था और राज्य के प्रत्येक महकमे पर निगाह रखता था। वह आतंक बैठाने को बहुत अच्छा समझता था। उसने अपने कई बड़े-बड़े वज़ीरो को सड़को पर कोड़े तक लगवाए थे। शिवाजी और अकबर की तरह, जो उसी की तरह अनपढ थे, ठीक जगह के लिए ठीक ही आदमी चुनने का बुद्धिकौशल भी उसमे यथेष्ठ था। उसे किसी तरह की किताबी शिक्षा नहीं मिली थी, पर उसमे सतर्कता, याददाश्त और दृढ़-निश्चय के गुण थे, और इन तीनो के मेल ने उसे एक प्रबल शासक बना दिया था।

चेतसिंह का मामला—हैदरअली और मराठो के साथ युद्ध करते रहने के कारण वारेन हेस्टिंग्ज़ को धन की बड़ी

हुई। इससे उसने कुछ ऐसे कार्य किये जिनके कारण उसकी घोर निन्दा हुई। सन् १७५५ में अवध के नवाव ने वनारस अंग्रेज़ों को दे दिया था। अंग्रेज़ों ने अपनी तरफ़ से चेतसिंह को वनारस का राजा वना दिया था और वे उससे हर साल साढ़े वाईस लाख रुपया कर लेते थे। सन् १७७८ में वारेन हेस्टिंग्ज़ ने उससे पांच लाख रुपया और मांगा और वाद के दो वर्षों में भी इतनी ही रकम पाने की कोशिश की। राजा ने हेस्टिंग्ज़ के इस तरह रकम मांगने का विरोध किया, पर उसे यह रकम अदा करनी पड़ी। आख़िरी रकम अदा करने मे कुछ देर हो गई थी, इस लिये वारेन हेस्टिंग्ज़ ने उस पर पचास लाख जुर्माना कर दिया और जुर्माना वसूल करने के लिये वह खुद रवाना हो गया। राजा की गिरफ़ारी पर विद्रोह हो गया और गवर्नर-जनरल को भाग कर चुनार में शरण लेनी पड़ी। अन्त मे विद्रोह दवा दिया गया। चेतसिंह भाग कर ग्वालियर जा पहुँचा, अतः उसे गद्दी से उतार कर उसके भतीजे को उसके स्थान पर राजा वना दिया गया और उसे अपने चचा से भी कहीं अधिक कर देना पड़ा।

अवध की वेगमें—परन्तु इतने से भी कम्पनी के खाली खज़ाने का खालीपन न भरा और हेस्टिंग्ज़ ने धन पाने के लिये और किसी जगह की ओर निगाह दौड़ाई। अव उसने अवध के नवाव वज़ीर से "सहायता" की रक़म मांगी जो उसे कम्पनी को देनी थी। उधर आसफ़ुद्दौला अपने पिता के मरने के वाद से अपनी माता और दादी के कब्जे से (जो अवध की वेगमों के

नाम से मशहूर थीं) असंख्य रुपया और जागीर निकालना चाहता था। उसने वारेन हेस्टिंग्ज के सामने अपनी असमर्थता प्रकट की और कहा कि जब तक बेगमों के पास से राज्य का रुपया न निकले वह उसकी रक़म न दे सकेगा। नवाब ने सन १७७५ मे ही हेस्टिंग्ज़ को काफ़ी बड़ी रक़म दी थी और यह बात तय हो गई थी कि उससे फिर कभी कोई रक़म न मांगी जायगी। कलकत्ते की कौंसिल ने भी इस बात को बहुमत से पास कर दिया था। हेस्टिंग्ज़ ने बेगमों पर चेतसिंह के साथ मिलकर विद्रोह करने का अभियोग लगाया और आसफुद्दौला को जागीरों और धन पर कब्ज़ा करने का अधिकार दे दिया। कुछ मुकाबला भी किया गया, परन्तु इस मौके पर ब्रिटिश सेना से सहायता ली गई और बेगमों को अपना जमा किया हुआ रुपया दे देना पड़ा। इस तरह वारेन हेस्टिंग्ज़ को ७५ लाख रुपया तो मिल गया, पर उसका यह कार्य उसके लिए बड़ी बदनामी का कारण बना।

हेस्टिंग्ज के शासन का अन्त (१७८५)—उसके दीर्घ शासन काल का अन्त आ चला था। वास्तव मे उसकी हुकूमत का अन्त मैसूर की दूसरी लड़ाई के बाद ही हो गया था। उसने चेतसिंह और अवध की बेगमों के साथ जो बर्ताव किया था, उसकी कम्पनी के डाइरेक्टरो मे बड़ी आलोचना हो रही थी। प्रधान मन्त्री पिट ने भी सन १७८४ के अन्त मे उसकी बहुत सी बातों को नापसन्द किया था। हेस्टिंग्ज़ को पता लग गया कि अब उसका उस पद पर अधिक देर तक रहना उचित नहीं

असाधारण योग्यता वाले व्यक्ति के आश्रय पर ही कम्पनी भारत मे बराबर अपना सिर उठाए रह सकी।

उसके मार्ग मे अनेक बाधाएं थीं। वह उस समय गवर्नर बना था, जब भारत मे कोई उल्लेखनीय शासन-व्यवस्था ही नहीं थी। पर जब वह भारत से वापिस गया तो देश मे अशान्ति की जगह शान्तिपूर्ण शासन-व्यवस्था कायम हो चुकी थी इसी कारण उसका नाम "भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का शासन-व्यवस्थापक" पड़ा। दक्षिण भारत मे तीन बडी शक्तियां, जिनका मुकाबला करना कम्पनी के लिए आसान नहीं था, आपस मे गुटबन्दी कर रही थीं और यह हेस्टिंग्ज़ जैसे कुशल शासक की दूरदर्शिता का ही फल था कि कम्पनी को इस बड़े खतरे का सामना करने की ज़रूरत ही न रह गई। इसके साथ ही कौंसिल के विरोध का सामना करना भी साधारण बात नहीं थी, इस लगातार विरोध के कारण वह कभी कभी निराश-सा भी हो जाता था। यदि उन दिनों कोई उस से कम दृढ़ निश्चय वाला व्यक्ति उस पद पर होता तो वह अवश्य ही सब कुछ छोड भागता। कम्पनी का खज़ाना खाली था और हेस्टिंग्ज़ को इसी लिए कुछ ऐसे कार्य भी करने पड़े, जिनके कारण उसके नाम पर धब्बा लग गया। परन्तु उसने यह सब अपने देश के लिए किया।

एक अंग्रेज़ ऐतिहासिक ने हेस्टिंग्ज़ के सम्बन्ध मे लिखा है—"वैसी कठिन परिस्थितियों मे काम करने वाला ऐसा कोई अन्य मनुष्य नहीं पैदा हुआ जो इतनी छिद्रान्वेषी और प्रतिकूल

आंखों के सामने भी अपना निजी और सार्वजनिक आचरण इतने प्रशंनीय ढंग से शुद्ध बनाए रख सका हो।"

प्रश्न

१. बङ्गाल का गवर्नर होने पर हेस्टिंग्ज़ को कैसी असुविधाओं का सामना करना पड़ा और उसने उनका सामना किस ढंग से किया ?

२. उसने जिन जिन सुधारों की भारत में नींव डाली थी, उनके नाम गिनाओ। उसको 'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का शासन-व्यवस्थापक" कहना कहां तक ठीक है ?

३. हैदरअली के आचरण और कार्य-कलाप पर एक नोट लिखो।

४. मराठों की पहली लड़ाई का संक्षेप में वर्णन करो।

५ निम्नलिखित पर नोट लिखो—

नंदकुमार, चेतसिंह, सल्बाई की सन्धी, रेगूलेटिंग ऐक्ट।

६. क्लाइव और हेस्टिंग्ज़ तथा उनकी नीति व कार्यों की परस्पर तुलना करो।

पांचवां अध्याय

लार्ड कार्नवालिस

पिट का इण्डिया बिल – हेस्टिंग्ज़ के शासन काल के अन्त मे भारतवर्ष की ओर ब्रिटिश सरकार का काफी ध्यान आकर्षित हो गया था । रेगूलेटिंग ऐक्ट के दोषो के कारण एक और विधान बनाने की आवश्यकता अनुभव की गई । अमेरिका इङ्गलैंड के हाथ से निकल गया था, अब उसकी कमी को पूरा करने के लिए अङ्गरेज़-राजनीतिज्ञो ने भारत का शासन सुधारने और उसे अपनी मुट्ठी मे कस कर पकड लेने का निश्चय किया ।

इङ्गलैंड के प्रधान मन्त्री पिट ने पार्लियामेण्ट से एक बिल पास करा लिया, जो " पिट का इण्डिया बिल " के नाम से मशहूर है । इस बिल के पास हो जाने पर कम्पनी के राजनीतिक और व्यापारिक कार्यों में परस्पर भेद स्पष्ट कर दिया गया । इसके द्वारा दीवानी, सेना और कर सम्बन्धी सारे कार्य

राजनीतिक और व्यापारिक विभागो मे भेद

के सपुर्द कर दिए गए, जो "वोर्ड आफ़ कंट्रोल" कहलाता था, इसमे छः सदस्य होते थे और उनको नियुक्ति सम्राट द्वारा होती थी।

युद्ध करने और भारतीय नरेशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का पूर्ण अधिकार अब इसी वोर्ड को प्राप्त था। हां,

नवीन नीति

व्यापार के मामले मे कम्पनी के डाइरेक्टरों को पहले जैसी सुविधा थी। बाद में लार्ड कार्नवालिस के ज़ोर देने पर गवर्नर-जनरल को अधिकार दे दिया गया कि वह अत्यन्त आवश्यक कार्यों में कौन्सिल की अनुमति विना भी काम कर सकता है। गवर्नर जनरल के विरुद्ध गुट्टवंदी करना असम्भव बनाने के लिए कौसिल के सदस्यों की संख्या चार से तीन कर दी गई और यह भी घोषित किया गया कि भविष्य मे भारत में राज्य-विस्तार की जगह शांति की नीति का पालन किया जायगा।

इस प्रकार कम्पनी पर बृटिश पार्लियामैंट का पहले से भी अधिक नियन्त्रण हो गया और भारत के शासन का अधिकार कम्पनी के हाथ से निकाल कर सम्राट के हाथ मे देने की ओर एक और कदम वढ़ाया गया।

लार्ड कार्नवालिस(१७८७–१७९३)—वारेन हेस्टिंग्ज़ ने भारत से जाते समय अपने पद का भार अपनी कौन्सिल के ज्येष्ट मैम्बर सर जान मैकफरसन को सौप दिया था। सर जान मैकफरसन बाईस महीने तक गवर्नर-जनरल के पद पर काम करता रहा। इसके बाद लार्ड कार्नवालिस नामक एक प्रभावशाली लार्ड

और उच्च आचरण वाला व्यक्ति गवर्नर-जनरल बनाया गया। इस व्यक्ति पर ब्रिटिश मंत्रियों का पूर्ण विश्वास था। हम पहले ही कह आए हैं कि इसे आवश्यक मामलो मे कौन्सिल के निर्णय को रद करने का भी अधिकार दे दिया गया था। साथ ही इसे सेना का कमाण्डर-इन-चीफ भी बनाया गया था। कार्नवालिस भारत मे पिट के "इंडिया बिल" के अनुसार तटस्थता की नीति बरतने का निश्चय करके आया था और भारत मे कार्यभार अपने पर लेते ही उसने यह घोषणा कर दी कि वह अपना ध्यान कम्पनी की कार्य-प्रणाली के सुधार मे लगाएगा और जहां तक सम्भव होगा युद्ध से दूर रहेगा।

तटस्थता की नीति का आरम्भ

उसका इस पद पर नियुक्त किया जाना इस दृष्टि से भी महत्व-पूर्ण था कि इस कार्य के द्वारा भारत मे एक नई नीति का आरम्भ किया गया जो बाद मे भी पालन की जाती रही और आज तक भी वही नीति बरती जाती है। वह यह थी कि भविष्य मे भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल ऐसा पुरुष बनाया जाय, जिसने भारत में पहले कभी कोई नौकरी न की हो।

सुधार—लार्ड कार्नवालिस का महत्व उसके किए हुए सुधारों मे है। उसके आने से पहले कम्पनी के शासक कर्मचारी सिविल कोर्ट के जज भी होते थे और माल-गुज़ारी भी एकत्र करते थे। उसने मालगुज़ारी इकट्ठी करने वाले शासक कर्मचारियों से

मालगुजारी और न्याय-विभाग

न्याय-निर्णय के अधिकार छीन लिए और उनके जिम्मे सिर्फ़ मालगुजारी इकट्ठा करने का काम ही रहने दिया। न्याय-व्यवस्था के लिये कार्नवालिस ने हर ज़िले मे एक दीवानी अदालत क़ायम की, जिसका प्रधान एक यूरोपियन होता था। ढाका, मुर्शिदाबाद और पटना मे चार प्रांतीय अदालतें नियत की गईं, कलकत्ता सदर दीवानी अदालत और सदर निज़ामत अदालत क्रम से दीवानी और फौजदारी की सर्वोच्च अदालतें रहीं। पुलिस के महकमे का पुन. संगठन किया गया और हर ज़िले की पुलिस का चार्ज दारोगा को सौंप दिया गया।

कम्पनी की नौकरियों में सुधार

कार्नवालिस ने कम्पनी के कर्मचारियों मे से नज़रें लेना, निजी व्यापार करना आदि बुराइयों को दूर करने की कोशिश की। वास्तव मे उनकी तनख्वाहे इतनी थोड़ी थीं कि किसी तरह अपनी आय को बढ़ाना उनके लिए स्वाभाविक ही था। कम्पनी के डाइरेक्टर पुरानी प्रथा मे परिवर्तन लाने के लिए विवश किए गए और नौकरों के वेतनो मे वृद्धि कर दी गई, जिससे वे लोग अपने वेतनों पर ही संतुष्ट रह सकें।

बङ्गाल का स्थायी बन्दोबस्त—लार्ड कार्नवालिस ने बङ्गाल मे जो सबसे बड़ा सुधार किया, जिसके कारण उसका नाम चिरस्थायी रहेगा, वह बङ्गाल की स्थायी लगान-व्यवस्था है।

भारतवर्ष सदा से कृषि-प्रधान देश रहा है। इस देश की

आमदनी का मुख्य भाग लगान से ही प्राप्त होता रहा है। उपज का भाग लेने और कर इकट्ठा करने के सम्बन्ध मे अलग अलग शासनो मे अलग अलग इन्तज़ाम रहे हैं। जब कम्पनी को बङ्गाल की दीवानी मिली तो उसे पता चला कि वहां लगान-व्यवस्था लगभग वैसी ही है, जैसी मुगलो के ज़माने में थी। किसान अपनी उपज का एक निश्चित भाग ज़मींदार को दे देते थे, जो उसे इकट्ठा करके सरकार को देने के प्रतिफल स्वरूप उसका कुछ भाग स्वयं रख लेता था। ज़मींदारी की प्रथा पुश्तैनी-सी हो गई थी। हम देख ही चुके कि वारेन हेस्टिंग्ज़ ने पांच साल तक लगान का पट्टा नीलाम करने का रिवाज चलाया था। तब बिना किसी हैसियत के आदमी भी नीलाम पर ऊची बोली बोल देते थे, परन्तु वे अपनी बोली की रकम अदा नहीं कर सकते थे, इसलिए पट्टे की अवधि साल भर करदी गई। मगर इसका भी कोई विशेष अच्छा नतीजा न निकला, क्योंकि इस थोड़ी अवधि से ज़मींदार अनुत्साहित हो गए और ज़मीनो की उपज बढाने की ओर उन्हें कोई उत्साह न रहा। क्योंकि ज़मीन की पैदावार बढ़ने पर उन्हें तो उस में से कुछ मिलना ही नहीं था। कार्नवालस की राय थी कि जमींदारो को विश्वास दिला दिया जाय कि सरकार उनसे जमीनें नहीं छीनेगी और यदि वे अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा उपज की शक्ति बढ़ाने मे लगाएंगे तो वह मालगुजारी मे वृद्धि न करेगी। अतः सन १७६३ में तय किया गया कि सरकारी माल-

मालगुजारी एकत्र करने की व्यवस्था

गुज़ारी निश्चित कर दी जाय । कार्नवालिस की सिफ़ारिशों को इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री और बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल के सभापति ने स्वीकार कर लिया और उसी साल बङ्गाल में स्थायी बन्दोबस्त की घोषणा कर दी गई ।

गुण

इस नई योजना से लगान की व्यवस्था मे कुछ स्थिरता आ चली और उससे जमींदारों को जमीन की हालत सुधारने का प्रोत्साहन मिला । अब जमींदारों को लगान की एक निश्चित मात्रा ही देनी पडती थी, अतः उपज बढा कर वे अपनी आय बढाते थे । इस तरह धीरे धीरे उनके पास अच्छा धन जमा हो गया । धनी जमींदारों की इस जमात का सरकार को दूसरा लाभ यह हुआ कि इस देश में राजभक्तों की एक जमात पैदा होगई, जिसे अपने हितों की ही चिन्ता रहती थी ।

दोष

पर जहाँ कलम की एक गति से इस नए बन्दोबस्त द्वारा जमींदारों को ज़मीन के स्वामियो के रूप मे बदल दिया गया था, वहां किसानो के पुराने अधिकारों की पूरी उपेक्षा की गई थी और उन्हें इन नए जमींदारो के रहम पर छोड दिया गया था । आगे चल कर नए कानूनी सुधारो से उनकी दशा भी संतोष-जनक बनाइ गई । पर कुछ दिनो के बाद कम्पनी और सरकार को यह मालूम होगया कि इस नए बन्दोबस्त द्वारा सरकार को आर्थिक नुक्सान होता है । क्योंकि ज़मीनों की पैदावार तो क्रमशः पहले से बहुत ज्यादा बढ़ गई और जमींदारों की आम-

दनी मे भी बेहद इज़ाफ़ा हो गया, परन्तु सरकार को अभी तक सन १७६३ की मालगुज़ारी ही मिलती जाती है। अतएव, बङ्गाल के ज़मीदारों की सुविधाएं बनाए रखने के कारण, अपना अपना बजट पूरा करने के लिए भारत सरकार को बहुत दिनो तक शेष भारत पर ज्यादा सख्ती से कर लगाना पड़ा है।

मैसूर की तीसरी लड़ाई (१७९०-१७९२)— यद्यपि कार्नवालिस की बडी इच्छा थी कि शान्ति बनी रहे—और

कारण

पिट के बिल ने उसे इसके लिए और भी बाध्य कर दिया था—परन्तु वह मैसूर के साथ कम्पनी के विरोध को दूर न कर सका। सन १७७६ मे टीपू ने ट्रावनकोर नाम की हिन्दू रियासत पर धावा कर दिया और वहां अशान्ति मचा दी। जब वहां के राजा ने, जो ब्रिटिश संरक्षण में था, ब्रिटिश सरकार से सहायता की प्रार्थना की, तो कार्नवालिस ने टीपू के विरुद्ध निजाम और मराठो से मेल कर लिया।

मद्रास कौन्सिल ने पहले की तरह युद्ध की तैयारियों मे देर करनी शुरू की। इस पर कार्नवालिस ने दक्षिण पहुँच कर सेना-

घटनाएं

संचालन का काम स्वयं अपने हाथ में लिया। उसने बङ्गलौर पर अधिकार कर लिया और टीपू को उस की राजधानी से नौ मील दूर, अरीकेर नामक स्थान पर हरा दिया। परन्तु युद्ध-सामग्री ख़तम हो गई थी इस लिए मित्र सेनाओं को वापिस लौटना पड़ा और कार्नवालिस बङ्गलौर लौट गया। यहां उसने सेना को पुनः तैयार किया और टीपू की राजधानी की

ओर दुबारा कूच कर दिया। टीपू को सिरङ्गापट्टम की ओर खदेड़ दिया गया, और उस ने युद्ध जारी रखने में लाभ न देख कर सन्धि की प्रार्थना की। वह युद्ध की क्षति के एवज़ में तीन करोड़ रुपया और अपना आधा राज्य देने को राजी होगया। अंग्रेज़ों ने उस के दो लड़के भी अमानत स्वरूप रख लिए। उस आधे राज्य को मित्र शक्तियों में बराबर बराबर बांट दिया गया। अंग्रेज़ो के हिस्से में करनाटक, कीमा और मालाबार तट के प्रदेश आए।

सिरङ्गापट्टम की सन्धि

सन १७६३ के अन्त में कार्नवालिस वापस चला गया। वह दुराचरण का शत्रु था, अतः वह भारत को छोडने से पहले शासन-व्यवस्था में बहुत कुछ सुधार करने मे सफल हुआ था। उस ने शासन-व्यवस्था को एक नया रूप दे दिया—यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है।

सर जान शोर (१७९३–१७९८)

—यह नियम बना दिया गया था कि भारत का गवर्नर-जनरल वही व्यक्ति हो सकेगा, जिसने पहले कभी वहां नौकरी न की हो, पर कलकत्ता कौन्सिल के एक सदस्य सर जान शोर के लिए यह नियम अपवाद के रूप में शिथिल कर दिया गया। उसे गवर्नर-जनरल के पद पर नियुक्त कर दिया गया। शोर ने तटस्थता की नीति का पूरी तरह पालन किया, और उसको इस हद तक अपनाया कि कुछ लोगो को भारत मे ब्रिटिश राज्य के नष्ट होने तक का खतरा होने लगा। मराठों को यह बात जानने मे देर न

तटस्थता की नीति

लगी कि नया गवर्नर जनरल उनके कामों मे रुकावट न डालेगा, इस लिए अब उन्होंने अपने पुराने शत्रु निज़ाम को कुचलने का निश्चय किया। निज़ाम ने ब्रिटिश सरकार से सहायता की प्रार्थना की। पर सर जान शोर अपनी धुन का पक्का था, उसने किसी तरह का दखल देने से इनकार कर दिया। निज़ाम को मराठों से

खर्दा

अकेले लडना पडा और सन १७६५ मे उसकी बुरी तरह हार हुई। निजाम को अंग्रेज़ो के इस विश्वासघात पर क्षोभ हुआ, उसने अपने राज्य से ब्रिटिश सेना को बर्खास्त कर दिया और अपनी सेना की शिक्षा के लिए एक फ्रैंच अफ़सर रख लिया।

सन १७६७ मे अवध के नवाब आसफुद्दौला की मृत्यु हो गई और गद्दी के लिए झगडा उठने पर शोर ने अपनी नीति मे कुछ शिथिलता कर दी। उसने पिछले नवाब के भाई सआदतअली को अवध की गद्दी पर बैठा दिया और उसके साथ सन्धि करली। कम्पनी ने ७६ लाख रुपये सालाना पर अवध की रक्षा का भार अपने जिम्मे ले लिया।

सर जान शोर ने अपने शासन-काल में तटस्थता की जिस नीति का अनुसरण किया, उससे जहां कम्पनी के व्यापार को वड़ा लाभ पहुँचा, वहां उसका सैनिक रोब अवश्य कम होगया। अब

परिणाम

तक भारत मे अंग्रेज़ी सेना अपने संगठित और चतुरता पूर्ण आक्रमणों के कारण यहां के अन्य शासको के लिये भय का कारण बनी हुई थी। परन्तु सर जान

शोर की इस नई रीति के कारण उनका डर धीरे धीरे कम होने लगा। परिणाम यह हुआ कि टीपू सुल्तान और मराठे अपना वल वढ़ाने लगे । इसी वीच में सन १७९८ में सर जान शोर को त्यागपत्र देकर इङ्गलैंड लौट जाना पड़ा । उन दिनों उत्तर भारत में महादजी सिंधिया का वोलवाला था, उसकी सेना मे फ्रैंच लोग भी थे। दक्षिण में मराठे अपना राज्य-विस्तार कर रहे थे और उधर टीपू सुल्तान कावुल के अमीर के साथ सन्धि स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था।

प्रश्न।

१. पिट के इण्डिया विल पर एक नोट लिखो।

२. वगाल के स्थायी वंदोवस्त का विशेष रूप से ज़िक्र करते हुए लार्ड कार्नवालिस के शासन का संक्षिप्त विवरण लिखो।

३. सर जान शोर के शासन मे जिस तटस्थता की नीति का पालन किया गया था, उसके परिणाम दिखाओ।

छठा अध्याय

लार्ड वैलज़ली (१७९८-१८०५)

भारत का नया गवर्नर-जनरल लार्ड मारींगटन (बाद को लार्ड वैलज़ली) भारत मे विजय कार्य और साम्राज्य-सीमा के विस्तार का काम जारी रखने के उद्देश से नहीं आया था, किन्तु तत्कालीन नाजुक अवस्था ने, जिसका वृत्तान्त हमने पिछले अध्याय मे देने की चेष्टा की है, उसे विश्वास दिला दिया कि भारत में एक ऐसी शक्ति का होना अत्यावश्यक है, जो सब से अधिक सामर्थ्य रखती हो, जिसके आदेशो का सब पालन करे, और जो विभिन्न शक्तियों को आपस मे युद्ध करने से रोक सके। लार्ड वैलज़ली ने अपने देश के लाभ के लिए सोचा कि ऐसी शक्ति अंग्रेजों की ही हो सकती है। अतः शासन काल के इतिहास में तटस्थता की नीति के स्थान पर एक नई ही नीति बरती गई।

अग्रसर नीति

उसने अपना उद्देश पूरा के करने के लिए एक ऐसी आयोजना अपनाई, जो बाद को सहायता सम्बन्धी व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध

सहायता-विधान

हुई। वह सम्पूर्ण देशी नरेशों के सामने, जिनसे अंग्रेज़ों का किसी भी तरह का सम्बन्ध रह चुका था, सन्धि के प्रस्ताव रखना चाहता था, इस का उद्देश्य यह था कि वे सब भारत में अंग्रेज़ो की सर्वश्रेष्ठ सत्ता स्वीकार कर लें। उसने उन्हें लिखा कि वे अपनी रक्षा का भार अंग्रेज़ों को सौंप दें, अपने राज्यों मे एक अंग्रेज़ी सेना रक्खें और उसका खर्च खुद उठाएं। इस सेना का प्रधान कर्तव्य यह होगा कि वह उनके शत्रुओं से रियासत की रक्षा करे और रियासत के भीतर शान्ति बनाए रक्खे। वैलज़ली ने सम्पूर्ण देशी नरेशों के सामने यह आयोजना भी रक्खी कि कोई रियासत दूसरी किसी रियासत के साथ बिना अंग्रेजों की सम्मति के, आक्रमणकारी या आत्म-रक्षात्मक विग्रह या सन्धि न करे। सब नरेशों को अपने दरबारों मे एक एक अंग्रेज़ रेज़ीडेण्ट को भी स्थान देना होगा। इस सेना के व्यय को "सहायता" का नाम दिया गया था, अतः यह व्यवस्था भी सहायता सम्बन्धी व्यवस्था (Subsidiary Alliance) कहलाई जाने लगी।

निज़ाम ने सहायता व्यवस्था स्वीकार की

इस सन्धि के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वाला पहला नरेश हैदराबाद का निज़ाम था। उसे मराठों के हाथों काफ़ी क्षति उठानी पड़ी थी, इस लिए वह अंग्रेज़ो के साथ मित्रता करने के लिए बहुत इच्छुक था।

मैसूर की चौथी लड़ाई (१७९९)—अब गवर्नर

जनरल ने अपना ध्यान टीपू की ओर केन्द्रित किया। उस समय

कारण

मिश्र से फ्रेंच सेनापति नेपोलियन बोनापार्ट भारत पर अधिकार करने का स्वप्न देख रहा था, अतः टीपू के फरासीसियों से सुलह कर लेने पर अंग्रेज़ों मे घोर आतंक फैल गया था। वैलज़ली ने टीपू से फ्रेंचों के साथ समझौता करने की कैफ़ियत मांगी, इसका उसने जो उत्तर दिया, वह निरर्थक और टालमटोल करने वाला समझा गया, और उस पर चढ़ाई करदी गई। एक प्रबल सेना, जिसके साथ निज़ाम की भी थोडी-सी फ़ौज थी, जनरल हेस्टिंग्ज़ के सेनापतित्व मे मद्रास से चल पडी। उधर बम्बई से जनरल स्टुअर्ट के मातहत एक साधारण-सी सेना भी चली। स्टुअर्ट से टीपू की मुठभेड सन्दासिर मे हुई। यहाँ टीपू बहुत कुछ क्षति उठा कर पीछे हट गया। इसके बाद उसने मद्रास वाली सेना से मेलपेली मे युद्ध किया। यहाँ भी उसकी हार हुई और वह

टीपू की मृत्यु

अपनी राजधानी को चला गया। वहां भी घेरा डाल दिया गया और भयकर संघर्ष के बाद रगपट्टन पर अधिकार कर लिया गया। इस प्रकार उस पर अंग्रेज़ो का अधिकार हो गया। लड़ाई में टीपू बहादुरी के साथ लडता हुआ मारा गया।

उसके राज्य का मध्यभाग उसी पुराने हिन्दू राजवश को सौंपा गया, जिसे गद्दी से उतार कर टीपू का बाप खुद मालिक बन बैठा

प्राचीन हिन्दू राजवंश की स्थापना

था। उक्त राजवंश का वंशज कृष्णराज ओडयर एक पांच वर्ष का बालक था। उसे गद्दी पर बैठाया गया और एक "वलीयों की

तंजौर

से उसका विस्तार करने का प्रयत्न किया। तंजौर मे गडबड थी। यह कहा गया कि वहाँ की प्रजा पर अत्याचार किया जाता था। साथ ही वहा के राजा के मरने के बाद राज्य के उत्तराधिकारी के विषय मे झगडा उठ खड़ा हुआ था। लार्ड वैलज़ली ने मृत राजा के पुत्र को पेशन दे दी और तंजौर को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। दूसरे वर्ष कर्नाटक के नवाब को भी इस आधार पर सिंहासन से उतार दिया गया कि उसने टीपू सुल्तान से विश्वासघातपूर्ण पत्र-व्यवहार किया था। सूरत के नवाब की भी यही दशा हुई।

कर्नाटक और सूरत

मराठे—जिस समय वैलजली ने शासनाधिकार अपने हाथ में लिया, उस समय मराठों के राज्य मे अशांति दिन पर दिन बढती जा रही थी। महादजी सिंधिया की मृत्यु हो गई थी और उसकी जगह दौलतराव सिंधिया सिंहासन पर बैठ चुका था। माधवराव ने नाना फड़नवीस के नियन्त्रण से उकता कर सन् १७९५ मे आत्महत्या कर ली थी और अब राघोबा के लडके द्वितीय बाजीराव को पेशवा बना दिया गया था। उसमे और नाना फडनवीस मे—जिसने राघोबा के पिता के अधिकारो का विरोध किया था—आपस में अच्छे भाव नहीं थे।

नाना फड़नवीस की मृत्यु

नाना फडनवीस इस नए पेशवा के हाथो काफ़ी अपमानित होकर मर गया, और इसके साथ ही साथ महाराष्ट्र की बुद्धि और विवेक

अब दोनो ने मिल कर अपने प्रधान पुरुष के रक्षक के साथ युद्ध करने का निश्चय कर लिया, जिससे मराठो के उज्ज्वल नाम पर धब्बा न लगने पाए।

मराठों की दूसरी लड़ाई (१८०३-१८०५)—दक्षिण और हिन्दुस्तान के युद्ध, प्रधान युद्ध थे। दक्षिण के युद्ध के लिए सेनापति का भार आर्थर वैलजली को सौंपा गया और हिन्दुस्तान की लड़ाई का भार जनरल लेक के सुपुर्द हुआ। आर्थर वैलज़ली ने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया और ऐसेई नामक स्थान पर घमासान युद्ध के बाद सिंधिया और भोसले की सम्मिलित शक्ति को हरा दिया। उत्तर मे जनरल लेक ने अलीगढ़ पर अधिकार कर लिया और दिल्ली के किले की दीवारो के निकट सिंधिया की सेना को हरा दिया। शाह आलम अंग्रेज़ो के हाथ में पड गया और इसके कुछ दिनों बाद ही सिंधिया की सेना को लासवारी मे हरा दिया गया।

ऐसेई और अरगाव

लासवारी

इस विजय के बाद अंग्रेज़ों का सिंधिया के साथ युद्ध समाप्त हो गया, क्योंकि वर्ष के अन्तिम दिन, सूरजी अरजनगांव नामक स्थान पर, सिंधिया सहायता सम्बन्धी व्यवस्था पर दस्तखत करने को राज़ी हो गया। उसने बरोच का बन्दरगाह, अहमदनगर का बन्दरगाह तथा गंगा और यमुना के बीच का प्रदेश—ये सब

स्थान अंग्रेजों के सुपुर्द कर दिए। इधर भोसला ने भी अरगांव में हार खाकर देवगॉव मे अँग्रेज़ों से सन्धि कर ली थी। उसने वरार और कटक के प्रदेश कम्पनी के सुपुर्द कर दिए।

देवगांव और अरजन-गाव की सन्धियां

होल्कर के साथ युद्ध--अब केवल जसवन्तराव होल्कर ही एक ऐसा राजा शेष वचा था, जिसने अभी तक हार नहीं मानी थी। अंग्रेज़ों के हित की दृष्टि से यह अत्यावश्यक था कि उसका अंग्रेज़ों के साथ कोई न कोई समझौता हो जाय। परन्तु सन्धि के लिए होल्कर ने जो शर्तें पेश कीं, उन्हे वैलज़ली ने स्वीकार नहीं किया। अतः उसने अंग्रेजों के मित्र राजपूत राजाओ के देशों को रौंद डाला। इस पर गवर्नर जनरल ने होल्कर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

आरम्भ मे अंग्रेज़ों की क्षति हुई। कर्नल मानसन राजपूताने मे बहुत आगे बढ़ गया था। उधर नदियो मे बाढ़ आई हुई थी। उसे बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ा। मानसन को भारी हार खानी पडी और मुकन्दरा के दर्रे मे तो उसकी तीन सेनाएं बिल्कुल ही नष्ट हो गई। इस पर होल्कर की धारणा होगई कि जिस शक्ति से सिंधिया और भोसला परास्त होगए उसे शायद वह जीत सकेगा। परन्तु उसे जनरल लेक ने फरुखाबाद और डीग मे हरा दिया। तथापि लेक भरतपुर का किला विजय करने मे असफल रहा और उसकी सेना को बार बार पीठ दिखानी पड़ी। इसलिए उसे वह यश न मिल सका। अंग्रेजों के साथ

डीग

भरतपुर का घेरा

तीन महीनों तक युद्ध करने के बाद होल्कर युद्ध से थक गया और उसने भी सन्धि करली। इसी नाज़ुक मौके पर वैलज़ली को भारत से लौट जाना पड़ा, होल्कर के लिये यह अच्छा ही हुआ, अन्यथा सम्भव था कि उसकी भी वही दशा होजाती, जो अन्य मराठा नरेशों की हुई थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टर इस तरह कम्पनी की तरफ़ से युद्ध होते रहने की नीति का बहुत दिनों से विरोध कर रहे थे, क्योंकि इससे उनके हिस्सों के मुनाफे पर असर पड़ने की सम्भावना थी। कर्नल मानसन की हार के बाद उन्हें यह कहने का

वैलज़ली को वापस बुलाया गया

अवसर मिल गया कि स्वयं ही किसी से युद्ध शुरू कर देने मे केवल धन ही का व्यय नहीं होता, वह निष्फल भी साबित हो जाता है। और यह विरोध इतने प्रबल रूप से किया गया कि सन १८०८ मे लार्ड वैलज़ली को भारत से वापस बुला लिया गया।

वैलज़ली के कार्य—वैलज़ली ने भारत मे जो काम किए थे, उनके कारण उसकी गणना अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रमुख शासकों में की जाती है। जिस समय उसने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली, उस समय भारत मे आंतरिक युद्ध जारी थे, जिनसे ब्रिटिश राज्य के विस्तार के लिए बड़ी मदद मिल सकती थी। वह ताड़ गया कि पिट के कानून की नीति, कार्नवालिस और शोर की नीति, साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है, अतः उसने उसे त्याग दिया। उसे यह समझ आगया कि

भारत मे अंग्रेज़ लोग इतने बढ़ आए हैं कि अब इस देश की सब से बड़ी शक्ति बन सकते हैं। साथ ही उसका यह विचार भी था कि यदि हम इस अनुकूल परिस्थिति से लाभ न उठाएंगे तो हमारे स्थान पर कोई और लाभ उठा लेगा। और कोई नहीं तो फराँसी-सियों की नेपोलियन के नेतृत्व में बढ़ती हुई शक्ति भारत में अंग्रेज़ों के अस्तित्व को ख़तरे मे डाल देगी।

वैलज़ली के सारे कार्यों का प्रधान उद्देश भारत में कम्पनी की सत्ता स्थापित करना था। उसने इस काम के लिए जो तरीके बरते, उनकी सफलता का अनुमान इस बात से हो सकता है कि जिस समय वह यहाँ से गया उस समय तक अंग्रेज़ भारत में प्रधान शक्ति बन चुके थे। उसने टीपू का पतन कर दिया, निज़ाम से अधीनता स्वीकार करवाली और मराठों का संघ तोड़ दिया। उससे पहले भारत में ब्रिटिश साम्राज्य भी था, पर उसके जाने के बाद यहाँ केवल ब्रिटिश साम्राज्य ही रह गया। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उसकी शासन विस्तार की नीति को नापसन्द किया, पर बाद के इतिहास ने यह साफ़ बता दिया कि वैलज़ली ने जो कुछ किया, उससे भारत में अंग्रेज़ी शासन पूरे रूप में क़ायम हो गया।

कार्य और नीति

प्रश्न

१. वैलज़ली ने उदासीनता की नीति को क्यों त्यागा ?

२. भारत में ब्रिटिश सत्ता स्थापित करने में वैलज़ली का कितना

हाथ था ?

३. मराठों की दूसरी लड़ाई का हाल संक्षेप में लिखो।

४. इन पर संक्षिप्त नोट लिखो—

टीपू सुल्तान, महादजी सिंधिया और नाना फड़नवीस।

सातवां अध्याय

सर जार्ज बारलो और लार्ड मिंटो

लार्ड कार्नवालिस को पुनः भारत का गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा गया और उसे हिदायत की गई कि वह भारत में उदासीनता की नीति से काम ले। परन्तु इस बार वह कुछ अधिक कार्य न कर सका, क्यों कि भारत में आने के तीन महीने बाद ही उसका देहान्त हो गया।

कार्नवालिस का पुनरागमन

सर जार्ज बारलो (१८०५–१८०७)—सर जार्ज बारलो कौन्सिल का प्रधान सदस्य था। वह उदासीनता की नीति का बड़ा हिमायती था। लार्ड कार्नवालिस के बाद उसी को गवर्नर-जनरल बनाया गया। उसने अपने शासन के प्रारम्भ मे ही होल्कर के साथ, सुविधा-जनक शर्तों पर सन्धि स्थापित करली। सिंधिया के साथ एक नई सन्धि की गई, जिसके अनुसार उसे कुछ नवीन प्रदेश मिले। कुछ राजपूत रियासतों से ब्रिटिश संरक्षण हटा लिया गया। पहले

फिर तटस्थता की नीति

उन्हें सिंधिया और होल्कर के आक्रमणों से बचाने का अँग्रेज़ों ने वचन दिया हुआ था।

बारलो के शासन काल की एक और महत्त्वपूर्ण घटना वेलोर के सैनिकों का विद्रोह था। सेना मे कुछ परिवर्त्तन किए गए थे। सिपाहियो को आदेश दिया गया कि वे एक खास तौर का साफ़ा बांधें, खास ढङ्ग से दाढो के बाल कटाएँ, कानों मे छल्ले न पहिने, और क़वायद के समय जाति-सम्प्रदाय-सूचक चिह्न माथे पर न लगाएँ। इसका अर्थ सिपाहियो ने यह लगाया कि उन्हें धर्मभ्रष्ट करके ईसाई बनाने की कोशिश की जा रही है। उन्होने विद्रोह कर दिया और लगभग सौ सैनिको को क़त्ल कर डाला। किन्तु, इसी विद्रोह को बड़ी सख्ती के साथ दबा दिया गया। टीपू के पुत्र वेलौर ही मे रहते थे। यह सन्देह किया गया कि झगड़े की जड़ ये लोग ही हैं। अतः उन्हें कलकत्ते में भेज दिया गया। लार्ड विलियम बैन्टिक उस समय मद्रास का गवर्नर था। उसे वापस बुला लिया गया।

वेलोर का सिपाही विद्रोह

लार्ड मिण्टो (१८०७-१८११)—बारलो के बाद सन १८०७ में लार्ड मिण्टो आया। उसे भी हिदायत की गई कि वह अपने पूर्ववर्ती गवर्नर जनरल की नीति बरते, पर भारत में आने के कुछ ही दिनों बाद उसने यह अनुभव किया कि इस नीति से ब्रिटिश रोबदाब को धक्का पहुँच रहा है। उसका शासन साफ़ तौर से प्रकट करता है कि यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में वह स्वयं युद्ध

कर दिया। इस प्रकार वहां विद्रोह मच गया।

दूषनको

परन्तु इसका शीघ्र ही दमन कर दिया गया।

विदेशी शक्तियों के सम्बन्ध में नई नीति—पर लार्ड मिण्टो ने विदेशी शक्तियों के—विशेष कर सिक्ख शक्ति के—साथ जिस ढङ्ग की नीति बरती, उससे पता चलता है कि वह उदासीनता की नीति पसन्द नहीं करता था।

हम यह पहले ही कह आये हैं कि किस प्रकार सिक्ख सम्प्रदाय, जो प्रारम्भ मे एक धार्मिक सम्प्रदाय-मात्र था, सैनिक शक्ति के रूप में बदल गया। जब पानीपत की तीसरी

सिक्ख

लडाई के बाद अहमदशाह अब्दाली अफ़गानिस्तान मे वापिस चला गया, तो सिक्खो को अपनी शक्ति बढाने का मौका मिला। उन्होंने आत्मरक्षा के लिए छोटे छोटे दल बनाए। परन्तु, यद्यपि वे आत्मरक्षा अच्छी तरह कर सकते थे, तथापि उनमे कभी कभी आपस मे भी मारकाट हो जाती थी और उनमें उस सघ-शक्ति का भी अभाव था, जिससे वे कोई बडी शक्ति बन सकते।

रणजीतसिंह—इस अभाव को एक सिक्ख राजा के पुत्र रणजीतसिंह ने पूरा किया। उसने इन विभिन्न दलो का एक शक्तिशाली संघ स्थापित किया। मुगल साम्राज्य

उल्लेखनीय कार्यकलाप

के नाश के बाद जिन राजाओं ने शक्ति प्राप्त की, उनमे रणजीतसिंह विशेष उल्लेखनीय है। वह

सन १७८० मे पैदा हुआ था। वह बारह वर्ष की उम्र में ही अपने पिता की छोटी-सी जागीर का मालिक बनाया गया। अकबर और शिवाजी की तरह उसे भी पढ़ने लिखने का अवसर नहीं मिला। उसमे भी इन दोनों महापुरुषों की तरह जन्म ही से लोगों का नेतृत्व करने और शासन प्रबन्ध करने की असाधारण योग्यता थी। जब यह युवा ही था, तो अहमदशाह अब्दाली के पुत्र ज़मानशाह का ध्यान उसकी ओर खिचा और उसने सोलह वर्ष की आयु मे ही उसे लाहौर का सूबेदार बना दिया। तीन वर्ष के भीतर वह आज़ाद हो गया। उधर अफ़गानों में घरेलू युद्ध हो रहे थे। उन्हे रणजीतसिंह की ओर ध्यान देने का अवसर नहीं था। रणजीतसिंह ने ३०,००० सिपाहियों की एक बढ़िया-सी सेना यूरोपियन ढङ्ग पर तैयार की और उसकी सहायता से अपना राज्य सतलुज तक बढ़ा लिया।

कुछ समय तक सतलुज उसके राज्य की उत्तरी सीमा रही। सन १८०६ मे कुछ सिक्ख सरदारो मे, जिन्हे सतलुज और यमुना के बीच मे जागीरें मिली हुई थीं, आपस मे झगड़ा हो गया और उन्होने रणजीतसिंह से फ़ैसला करने को कहा। इस पर उनके विरोधियो ने ब्रिटिश सरकार से अपील की, क्योंकि यह प्रदेश (जो कुछ समय सरहिंद के नाम से मशहूर रहा था और जिस पर किसी समय सिंधिया का अधिकार था) सिंधिया की पराजय के बाद अंग्रेजो के अधिकार मे चला गया था। लार्ड मिण्टो अपने पड़ोस मे सिक्ख शक्ति को प्रबल होने देना

नहीं चाहता था। अतः उसने समझौते के लिये मैटकाफ़ को पंजाब मे भेजा। बहुत कुछ वादविवाद के बाद सन् १८०६ मे अमृतसर मे एक सुलहनामा तैयार किया गया, जिसके अनुसार सतलुज नदी को सिक्खों के राज्य की सीमा मान लिया गया। रणजीतसिंह ने सरहिंद पर से अपना हाथ उठा लिया और इस प्रकार दोनों शक्तियों में मित्रता स्थापित हो गई।

अमृतसर की सन्धि

नील और ट्रैफ़लगर के युद्ध के बाद अब फरांसीसियों के लिये भारत पर सामुद्रिक मार्ग से चढ़ाई करना असम्भव हो गया था। परन्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को अब एक और दिशा से भय हो गया था। उन्हें फ़ारस और अफ़ग़ानिस्तान की ओर से हमले की आशंका थी। तिलसिट की सन् १८११ की शांति-स्थापना के अनुसार रूस ने फ्रांस को यूरोप मे मनमानी करने और फ्रांस ने रूस को एशिया मे मनमानी करने की छुट्टी दे दी थी। इस कारण अंग्रेज़ और भी अधिक शंकित थे। भारत पर रूस और फ्रांस की गृध-दृष्टि देखकर लार्ड मिण्टो ने फ़ारस को अपना एक दूत भेजा। उधर इङ्गलैंड से भी होम गवर्नमेंट ने फ़ारस को एक दूत भेज दिया था। अब दोनों में झगडा उठ खड़ा हुआ। अन्त में फ़ारस का शाह इस बात पर राज़ी हो गया कि वह किसी यूरोपियन शक्ति को अपने राज्य की सीमा में से नहीं गुजरने

फरासीसियों की ओ से आशंका

फ़ारस और काबुल को राजदूत

देगा। इसके बाद मिण्टो ने काबुल के शासक शाहसुजा और सिन्ध के अमीरों के पास भी इसी सम्बन्ध में दूत भेजे और उन से मित्रता स्थापित करली।

सामुद्रिक आक्रमण——गवर्नर जनरल मिण्टो इतने ही से सन्तुष्ट न रहा। फ्रैंच-भय के विरुद्ध दूत भेजने के बाद उसने हिन्द-महासागर के फरासीसियों द्वारा अधिकृत द्वीपों को हस्तगत करने के लिये एक सामुद्रिक सेना भेजी। इन द्वीपों से आकर फ्रैंच सामुद्रिक सेना ब्रिटिश व्यापारियों पर आसानी से आक्रमण कर सकती थी। बोरबन मारीशस के द्वीप अंग्रेजों के अधिकार में आगए। मारीशस द्वीप अब भी अंग्रेजों के पास ही है। इसके बाद एक और सेना भेजी गई, गवर्नर जनरल स्वयं इस सेना के साथ गया। इसने जावा पर अधिकार किया। उस पर उस समय डचों का कब्जा था और डच फरासीसियों से मिले हुए थे।

कम्पनी का नवीन अधिकार पत्र (१८१३ —सन १६९३ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पूर्व में व्यापार करने का [illegible] के लिये जो अधिकार दिया गया था, वह सन १८१३ में समाप्त हो गया। ब्रिटिश जनता ने आग्रह किया कि इस एकाधि-कार [illegible] दिया जाय और व्यापार का अवसर सब को [illegible] कम्पनी को [illegible] चीन के [illegible] का [illegible]। [illegible], [illegible] भारत के व्यापार की सब को स्वतन्त्रता हो गई। जिस समय नवीन अधिकार पत्र दिया गया, उस समय [illegible]

कम्पनी के डाइरेक्टरों को आदेश दिया कि वे भारत की शिक्षा के लिये कम से कम दस हज़ार पौण्ड सालाना अवश्य ख़र्च करें। अब तक उनके राज्य में पादरियों को जाने की आज्ञा नहीं थी। अब उनके लिये भी कोई रुकावट न रही। इसके थोड़े ही दिनों बाद शिक्षा के क्षेत्र में और लोग भी आगे बढ़े। सन १८१६ मे डेविड हेयर और ब्रह्म समाज के प्रवर्त्तक भारतीय समाज-सुधारक राजा राममोहन राय के प्रयत्न से कलकत्ते मे हिन्दू कालेज स्थापित किया गया।

प्रश्न

१. वेलोर के गदर पर एक संक्षिप्त नोट लिखो।

२. महाराजा रणजीतसिंह के कार्य-कलाप का वर्णन करो। सन १८०९ को अमृतर की सन्धि किस कारण से हुई?

३. मिण्टो का विदेशी शक्तियों के साथ कैसा सम्बन्ध रहा?

की नीति को नहीं छोड़ा। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि देश की तत्कालीन छोटी छोटी शक्तियां निर्भय होकर बढ़ने का प्रयत्न करने लगीं। मराठे, राजपूत, गोरखे, सभी अपनी ताकत बढ़ाने के लिए गति करने लगे। खास तौर से मध्य भारत में तो ठगों के गिरोहों ने बिलकुल अराजकता मचा रक्खी थी। उन्हीं दिनों मार्किस हेस्टिंग्ज़ भारत में आया। जब उसने देखा कि इस देश मे अपना राज बढ़ाने का खूब खुला अवसर है, तो वह भी वैलज़ली की तरह से इस मौके का उपयोग उठाने से न चूका। परिणाम यह हुआ कि तटस्थता की नीति व्यवहारिक रूप में पुनः टूट गई।

नैपाल के साथ युद्ध (१८१४–१८१६)—जिस समय हेस्टिंग्ज़ ने शासन की बागडोर अपने हाथ मे ली उस समय, स्वयं उसी के शब्दो मे, भारत मे इस तरह के सात झगड़े थे, जिनमें हथियारों द्वारा ही फैसला होना सम्भव था। इन सातों मे सब से अधिक गम्भीर झगड़ा गोरखों के सम्बन्ध मे था, जिन्होंने सन १७६८ मे राजपूतों के प्राचीन राज्य पर अधिकार कर लिया था। साथ ही वे पूर्व की ओर से भूटान और पश्चिम की ओर से सतलुज की तरफ़ बढ़ते चले आ रहे थे। उनका साहस इतना बढ गया कि सन १८१४ मे उन्होंने दो ब्रिटिश ज़िलों पर अधिकार कर लिया। हेस्टिंग्ज़ ने उन्हें ब्रिटिश सरहद से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी. इस पर जब वे वापिस न गए तो उनके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी गई।

कारण

निश्चय हुआ कि गोरखा राज्य पर ब्रिटिश सेना चारों ओर से धावा करे। परन्तु प्रारम्भ मे देश के अपरिचित होने के कारण और गोरखों के खूब वहादुरी से युद्ध करने की वजह से उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़े। हाँ, पश्चिम में जनरल ओक-टरलोनी ने सारी रुकावटों को पार करके ब्रिटिश क्षति की पूर्ति कर दी। उसने गोरखों के सरदार अमरसिंह को मैलोन के किले में चारों ओर से घेरा डालकर वन्दी कर दिया और अन्त मे विवश होकर उसे आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। अब गोरखों ने शांति की इच्छा प्रकट की, परन्तु उनके आगे जो शर्तें रक्खी गई, वे इतनी कठोर थीं कि गोरखे उन्हे मंजूर न कर सके और दोनों ओर से पुनः कशमकश जारी हो गई। उधर जनरल ओकटरलोनी बराबर आगे बढ़ा चला जा रहा था। उसने गोरखों को कई वार हराया और अब गोरखों को अपनी राजधानी तक की रक्षा के विषय में आशंका होने लगी। उन्होंने पुनः समझौते का प्रस्ताव किया। सन १८१६ की सगोली की सन्धि के अनुसार वे तराई से निकल जाने और अंग्रेज़ों को कमाऊँ, गढ़वाल, देहरादून और शिमला के आसपास का प्रदेश देने को राज़ी हो गए। इन पहाड़ी इलाकों के मिल जाने से शिमला, नैनीताल और मसूरी आदि पहाड़ी नगर बसाए गए, जिनकी बदौलत प्रचण्ड गर्मियों में अंग्रेज़ी सरकार के कर्मचारियों को वहाँ जाने का सुभीता होगया है। उस समय से अब तक नैपाल ब्रिटिश सरकार

घटनाएं

मलौन

सगोली की सन्धि

का बराबर मित्र रहा है, और उसने भारतीय सेना मे अपने हज़ारो वीर गोरखे भर्ती कराये हैं।

पिंडारियों का विनाश—अब हेस्टिंग्ज़ का ध्यान पिंडारियों की ओर गया। उन्होंने मध्य भारत मे अशांति मचा रक्खी थी। ये अनिश्चित ढंग से लड़ाई करते थे। किसी खास जाति या श्रेणी से इनका सम्बन्ध नहीं था। उनमे परस्पर केवल एक ही सम्बन्ध था—दस्युवृत्ति ग्रहण करना। वर्षा ऋतु के समाप्त होजाने पर वे अपने घोड़ो पर सवार होकर जिधर निकल जाते, उधर ही बेरहमी और बर्बादी के सिवाय और कुछ नज़र न आता। जब हम इतिहास मे यह देखते हैं कि गांव वाले इन डाकुओं के निर्दय पंजों से बचने के लिये अपने घरो में खुद आग लगा लेते थे और उनमे अपनी स्त्रियों और बच्चों समेत भस्म हो जाते थे, सैंकड़ो स्त्रियां उनके पाशविक हाथों में पड़ कर शर्मनाक अपमान होने के भय से कुओं मे कूद कर जीवन समाप्त कर लेती थीं, तो उन दिनों के विनाश का भयानक चित्र आंखों के सामने खिच जाता है। इन लोगों को नष्ट करना वास्तव मे बहुत लाभकर सिद्ध हुआ।

हेस्टिंग्ज़ मध्यभारत के ठगों को दवाने के लिये बडा इच्छुक था, परन्तु सब से पहले उसे डाइरेक्टरों की अनुमति लेनी थी।

संकोच

सिंधिया और होल्कर की सेनाओं में पिंडारी लोग भी काफ़ी संख्या में थे, उन्हें दण्ड देने से आशंका थी कि कहीं उनके संरक्षक न बिगड़ खडे हों। यही कारण था कि

डाइरेक्टर दुविधा में पड़े हुए थे और यह विरोध मोल न ले
चाहते थे। परन्तु क्रमशः पिण्डारियों का दुस्साहस इतना ब
गया कि वे ब्रिटिश इलाकों मे भी बढ़ कर हाथ मारने लगे औ
ऐसे निर्दयतापूर्ण कार्य करने लगे कि डाइरेक्टरां को राय भी उन
अपने अधीन कर लेने के पक्ष में हो गई और उन्हें दबाने व
हेस्टिंग्ज़ को पूरा अधिकार दे दिया।

हेस्टिंग्ज़ ने इस आक्रमण के लिये आवश्यक प्रबन्ध जल्द
से कर डाला। वह पिंडारियों को केवल दबाना ही नहीं चाहत
था, वह उनका मूल से विनाश करना चाहता था

तैयारिया

उससे जहां तक हो सका, उसने पिंडारियों को राज-
पूतों और मराठों की रक्षा से वंचित किया। १,२०,००० आद-
मियों की एक सेना एकत्र की गई, जिसमे बड़े बड़े वीर ब्रिटिश
सैनिक भी सम्मिलित थे। इस प्रकार यह सेना अब तक भारत में
एकत्र की गई सम्पूर्ण ब्रिटिश सेनाओ से अधिक बलशालिनी
बन गई। इस कार्य में गवर्नर जनरल ने स्वयं भी भाग लिया।
सन् १८१७ की हेमंत मे हमला आरम्भ किया गया और दूसरे
वर्ष की हेमंत तक सारा कार्य समाप्त हो गया। जिन डाकुओं को
मैदान में नहीं मारा जा सका, उन्हें घरों में घेर कर टुकड़े टुकड़े
कर डाला गया। ठगों के प्रधान प्रधान मुखियाओं में से एक करीम
था, जो आत्मसमर्पण करके शांति के साथ एक बड़ी जागीर में
रहने लगा, दूसरा वासिल था, जिसने आत्महत्या कर ली, तीसरा

चीतू था, जो जंगलों मे भाग गया, जहाँ कहा जाता है कि वहाँ उसे एक चीते ने समाप्त कर दिया ; इन सब के सरदार अमीरखाँ ने जागीरदार होना मंजूर कर लिया, और उसे टांक का नवाब बना दिया गया।

कार्य में सफलता

मराठों की तीसरी (अन्तिम) लड़ाई १८१७—१८१९)—जैसा कि हेस्टिंग्ज़ को पहले ही सम्भावना थी इस विनाश कार्य से अंग्रेज़ो की मराठों के साथ एक बार पुनः लड़ाई छिड़ गई। यह कहा ही जाचुका है कि बाजीराव अंग्रेज़ो के प्रभुत्व से निकल कर फिर मराठा संघ स्थापित करना चाहता था। जब उसने देखा कि अंग्रेज़ नैपालियों और पिंडारियों के साथ युद्ध मे लगे हुए हैं, तो उसने सोचा कि बस, कन्धे पर से जुआ उतार फेंकने का यह ठीक मौका है।

सन् १८१५ मे गायकवाड़ का एक ब्राह्मण दूत, जो कर के विषय मे पेशवा और गायकवाड़ के झगड़े को शांत करने पूना गया था, पेशवा के मन्त्री जांबकजी के इशारे से मार डाला गया। गायकवाड़ अंग्रेज़ों की रक्षा मे शासन कर रहा था। अत. अंग्रेज़ों ने कहा कि जांबक को हमें सौंप दो। उसे उन्हें सौंपा गया ; परन्तु वह भाग निकला और इधर कहा जाता है कि पेशवा भी उसके साथ छिपे छिपे बातचीत करता और रुपये तथा आदमियों की सहायता दे कर विद्रोह के लिये उत्साहित करता

अंग्रेजों के विरुद्ध बाजीराव के षड्यन्त्र

रहा। यह सब बात पूना के रेज़ीडेण्ट को मालूम हो गई और उसने पेशवा को सन् १८१७ में एक नई सन्धि करने को बाधित किया। इस सन्धि से पेशवा के अधिकारों को बड़ा आघात पहुँचा और उससे मराठा संघ के प्रधान पुरुष की पदवी छीन ली गई।

पेशवा इसे सहन न कर सका। उसने शीघ्रता के साथ युद्ध की तैयारियां कीं और सारे मराठा नरेशों से स्वतन्त्रता के युद्ध मे भाग लेने की अपील की। उसने नवम्बर सन् १८१७ में किर्की में ब्रिटिश सेना पर आक्रमण किया परन्तु अन्त मे हार कर वह दक्षिण की ओर भाग गया और फिर सदैव भागता ही रहा।

किर्की

तथापि उसकी योजना सफल हुई। अब अन्य मराठा नरेशों ने भी हथियार सम्हाले। अप्पा साहब ने, जिसने सन १८१६ मे राघोजी की मृत्यु के बाद अपने संरक्षण मे रहने वाले उत्तराधिकारी राजा की हत्या करके उसका सिहासन छीन लिया था, सीताबाल्दी मे ब्रिटिश रेज़ीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। परन्तु उसे भी भारी हार खाकर पीछे की ओर भागना पड़ा। जब वह फिर गद्दी पर बैठा तो दुबारा झगड़ा उत्पन्न करने लगा। अब उसे गिरफ़ार कर लिया गया, पर वह निकल भागा और किसी अज्ञात स्थान में जाकर मर गया। जसवन्तराव होल्कर की विधवा पत्नी तुलसीबाई के विरोध करते रहने पर भी उसके सरदारों ने

अप्पासाहब भौंसले

उसकी हत्या करके अंग्रेज़ों से युद्ध ठान लिया। उस समय तुलसी बाई अपने नाबालिग लड़के की तरफ़ से स्वयं शासन कर रही थी। इस युद्ध मे इन्दौर की सेना की बुरी तरह हार हुई और अब नवयुवक होल्कर को केवल अंग्रेज़ों की दया का भरोसा ही शेष रह गया। इन मराठा नरेशो की पराजय और हेस्टिंग्ज़ के पास आजाने से सिंधिया के छक्के छूट गए और उसने कोई कार्यवाही नहीं की। अब केवल भागे हुए पेशवा के पीछा करने का काम ही शेष बचा था। उसने भी अश्टी और कोरिया गांव में हार खा कर अन्त मे अपने आप को अंग्रेज़ों के हाथ सौंप दिया। उसे गद्दी से उतार दिया गया और आठ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन दे कर कानपुर भेज दिया गया।

इस प्रकार ब्रिटिश प्रभुत्व के मार्ग में मराठा साम्राज्य रूपी अंतिम रुकावट भी दूर हो गई। पेशवा का पद तोड दिया गया। उसका देश ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया। केवल शिवाजी के एक वंशज राजा के पास सितारा का छोटा-सा राज्य यथापूर्व रहने दिया गया। युवक नरेश होल्कर और नागपुर के राजा की स्थिति अब सामन्त राजाओ के समान कर दी गई, और वे किसी भी तरह युद्ध करने के योग्य न रहे।

आन्तरिक शासन—हेस्टिंग्ज़ के शासनकाल के युद्धों और विजयों का इतिहास पढ़ते समय हमें यह न भूल जाना चाहिये कि उसने देश मे शिक्षा और सभ्यता फैलाने के लिये भी बहुत काफ़ी कार्य किया था। उसने बङ्गाल में अदालतों

की संख्या अधिक कर दी और किसी हद तक हिन्दुस्तानी अफ़सरों के अधिकार भी बढ़ा दिए थे। रैयत को ज़मीन्दारों के चंगुल से बचाने का भी उसने यत्न किया था। उसके लिये नियम बन गया कि जब तक वे अपना लगान बदस्तूर देते रहेंगे, उनके खेत न छीने जा सकेंगे। लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने देशी भाषाओं के

शिक्षा

स्कूल कायम करके शिक्षा की तरक्की की। उसकी पत्नी स्त्री-शिक्षा के लिये बड़ी उत्साहशालिनी थी शिक्षा के सम्बन्ध में ईसाई मिशनरी सब देशों मे तरक्की कर रहे थे। अब यहाँ भी वे आगे बढ़े। उन्होंने बंगाल मे काम आरम्भ किया, बंगाल में पुस्तकें लिखवाईं और उन्हें प्रकाशित किया, साथ ही बहुत-सी नई पाठशालाएँ भी स्थापित करवाईं।

सन् १८२३ में लार्ड हेस्टिंग्ज़ भारत से चला गया। जिस कार्य का वेलज़ली ने आरम्भ किया था उसे हेस्टिंग्ज़ ने समाप्त किया। नेपालियों को अपने अधिकार में कर लिया, मराठों को कुचल दिया गया और पिंडारियों को दबा दिया गया। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर आदि अनेक राजपूत रियासतों के राजा बहुत दिनों से पिंडारियों और मराठों के विरुद्ध सहायता मांग रहे थे। अब उन पर ब्रिटिश छत्रछाया हो गई। हेस्टिंग्ज़ के कार्यों की बदौलत कम्पनी का सारे देश पर निर्विवाद सिक्का बैठ गया।

लार्ड एमहर्स्ट (१८२३-१८२८)—लार्ड हेस्टिंग्ज़ के बाद लार्ड एमहर्स्ट की नियुक्ति हुई। इसके शासन में बर्मा की

लड़ाई एक प्रधान घटना थी। तत्कालीन बर्मा की राजसत्ता अलमपोरा नामक एक व्यक्ति ने १७५० में स्थापित की थी। बर्मी लोग सारी अठारहवीं शताब्दी में देश विजय करते रहे थे और इस समय तक अपने उत्तरीय बर्मा वाले प्रदेश के अतिरिक्त अराकान और आसाम के एक भाग के स्वामी भी बन चुके थे। उनकी राजधानी आवा थी। इन विजयों से उनका आत्मविश्वास बढ़ गया था। सन १८२३ में उन्होंने आसाम पर अधिकार कर लिया और बङ्गाल की खाड़ी में शाहपुरी नामक द्वीप पर, जो कम्पनी के अधिकार में था, कब्जा कर लिया। इस पर लार्ड एमहर्स्ट ने उनके साथ युद्ध छेड़ दिया।

बर्मा की पहली लड़ाई

बर्मा को जाने का मार्ग दलदल से भरे हुए जंगलों और दुर्गम पर्वतों से होकर था। अतएव ब्रिटिश सेना स्थलीय मार्ग से वहां न पहुँच सकी। तब यह निश्चय किया गया कि रंगून को एक सामुद्रिक सेना भेजी जाय और फिर इरावदी नदी को पार किया जाय। इस स्कीम के अनुसार सर आर्चीबाल्ड कैम्पबेल ने रंगून पर अधिकार कर लिया और फिर उसकी बर्मी जनरल महा बन्दुला से मुठभेड़ हुई। महा बन्दुला ने उत्तर बर्मा में सफलता प्राप्त की थी, इसलिए अब उसे दक्षिण में रंगून के वासियों की सहायता करने के लिए भेजा गया था। वह कैम्पबेल की सेना से हार कर डोनाब्यू को भाग गया और वहां वीरता के साथ एक और युद्ध करने के बाद मारा गया। इसके बाद ब्रिटिश सेना ने

घटनाएं

प्रोम पर अधिकार कर लिया और थोड़ी-सी सेना ने वर्मा की 'राजधानी आवा से चालीस मील दूर यण्डाबू पर भी धावा किया। इस पर वर्मी लोग डर गये और समझौता करने को राज़ी होगए।

यण्डाबू की सन्धि

यण्डाबू की सन्धि के अनुसार वर्मा के राजा ने आसाम, अराकान और टेनासरिम अंग्रेज़ों के सुपुर्द कर दिये, एक करोड़ रुपया क्षतिपूर्ति के लिए दिया और अपने दरबार मे ब्रिटिश राजदूत को रखने की अनुमति दे दी।

अन्य साधारण घटनाए--सन १८२५ मे भरतपुर का राजा मर गया। उसके भतीजे ने मृत राजा के नाबालिग लड़के

भरतपुर पर अधिकार

के अधिकारों को कुचल कर गद्दी पर खुद अधिकार कर लिया। नए उत्तराधिकारी के समर्थकों ने ब्रिटिश सरकार से अपील कीं। एक राजा ने कम्पनी को अपना मध्यस्थ बनाने से इन्कार कर दिया। अतः लार्ड एमहर्स्ट ने नाबालिग की तरफ से भरतपुर पर हमला करने का निश्चय किया। ब्रिटिश सेना भेजी गई और भरतपुर के क़िले को जिसकी मज़बूती ने सेनापति लेक का नाक में दम कर दिया था—बहुत दिनों के घेरे के बाद विजय कर, उस नाबालिग उत्तराधिकारी को गद्दी पर बैठा दिया गया।

लार्ड एमहर्स्ट पहला गवर्नर जरनल था जिसने गर्मियों में शिमला को अपनी राजधानी बनाया। वह वहां सन १८२७

शिमला

की अप्रैल से जून तक रहा। इसका अनुकरण उसके बाद के शासकों ने किया, और इन दिनों का झोपड़ियों

वाला ज़रा-सा गांव आजकल भारत सरकार की अंग्रेज़ी सरकार का केन्द्र बना हुआ है।

प्रश्न

१. हेस्टिंग्ज का नैपाल के साथ युद्ध कैसे हुआ? संक्षेप में लिखो।

२. जिस कार्य को वैलज़ली ने आरम्भ किया था, उसे हेस्टिंग्ज ने कैसे समाप्त किया?

३. हेस्टिंग्ज की नीति अपने तीन पूर्ववर्ती शासकों से किस बात में भिन्न थी?

४. ब्रह्मा की पहली लड़ाई का संक्षिप्त विवरण लिखो।

नौवाँ अध्याय

लार्ड विलियम बैंटिक (१८२८-३५)

नैतिक और भौतिक उन्नति

सन १८२८ के आरम्भ में लार्ड एमहर्स्ट चला गया और उस के स्थान पर लार्ड विलियम बैंटिक की नियुक्ति हुई। वह भारत की स्थिति से अनभिज्ञ नहीं था। वह पहले भी मद्रास के गवर्नर की हैसियत से काम कर चुका था। इस पद पर रहते हुए वेलोर के सिपाही-विद्रोह के सम्बन्ध में इसने जो नीति स्वीकार की थी, उससे कम्पनी के डाइरेक्टर असन्तुष्ट होगए थे और इस पर इसने त्याग-पत्र दिया था। तब तक वह भारत से बाहर रहा, उसने अपनी आर्थिक योग्यता का अच्छा परिचय दिया और जब सन १८२७ में नए गवर्नर जनरल की नियुक्ति का सवाल आया तो—क्योंकि बर्मा के युद्ध के कारण कम खर्चों की बहुत ज़रूरत थी—कम्पनी के डाइरेक्टरों ने इस पद के लिए इसे ही योग्य समझा।

प्रारम्भिक कार्य।

बैन्टिक भारत के प्रधान गवर्नर जनरलों में गिना जाने योग्य है, पर उसका कार्यक्षेत्र औरों से सर्वथा भिन्न था। उस समय इंग्लैंड मे सुधार का युग था, उन दिनों वहां कैथोलिक सम्प्रदाय की स्वाधीनता, दासप्रथा का मूलोच्छेदन और बिल के पास होने के कार्य हो रहे थे। बैन्टिक के हृदय मे भी अपने युग की सुधार-विषयक भावनाएँ काम कर रही थीं। अतः उसने भारत मे आते ही सुधार का काम शुरू कर दिया। वैसे चाहे शांतिपूर्ण गृह-व्यवस्था की अपेक्षा तोपों की गड़गड़ाहट, तलवारों की झनझनाहट और नक्कारों की आवाज़ अधिक सनसनी पैदा करने की योग्यता क्यों न रखती हो, परन्तु इतिहास का फैसला है कि—"युद्ध की तरह शांति मे भी विजय प्राप्त होती है।"

गवर्नर जनरल की हैसियत से

सुधार—यह पहले ही कहा जा चुका है कि लार्ड बैन्टिक की नियुक्ति के अन्य कारणों में एक प्रधान कारण यह था कि उस समय आर्थिक सुधार की अत्यन्त आवश्यकता थी। तब तक भारतवासियों को ऊँचे ओहदों पर नहीं रक्खा जाता था, अब वे पद उनके लिये भी खोल दिए गए। इससे शासन-प्रबन्ध मे बहुत कुछ किफ़ायतशारी की सम्भावना थी, क्योंकि हिन्दुस्तानी थोड़े वेतनों से ही संतुष्ट हो जाते थे। उसने दीवानी और फ़ौजी अफ़सरों के भत्ते मे कमी की और उत्तर-पश्चिम प्रान्त में (जो अब संयुक्त प्रान्त कहलाता है) तीन साल का लगान का पट्टा तय किया, इस प्रकार इस प्रान्त से राज्य को

आर्थिक

मिलने वाले लगान में काफ़ी वृद्धि हो गई। अपने इन कार्यों से वह भारी घाटे के स्थान १५,००,००० पौण्ड की बचत करने में सफल हुआ।

पर बैन्टिक ने कुछ ऐसे काम भी किए जिनके सर्वजन-हितकार होने के कारण उसका नाम इतिहास में सदा के लिए प्रधान स्थान पर रक्खा जायगा। उसका सबसे अधिक महत्वपूर्ण काम

सामाजिक

सतीप्रथा का उठा देना था। उन दिनों हिन्दू विधवाएं अपने मृत पति के शव के साथ चिता मे जल मरती थीं। अधिकांश अवसरों पर वे खुद प्राण त्यागने को तत्पर नहीं होती थीं, परन्तु उनके कुटुम्बी उन्हे पति के शव के साथ जल मरने

सती और ठगी

को बाधित करते थे। बैन्टिक ने सन १८२६ में एक कानून बनाया जिसके अनुसार सती-प्रथा को गैरकानूनी ठहराया गया और घोषणा करदो गई कि जो पुरुष इस में सहायता देंगे वे कानून की निगाह में हत्या के अपराधी समझे जाएँगे। उसने दूसरा काम यह किया कि ठगी का मूलोच्छेदन कर दिया। उस समय ठगों के दल वेश बदले हुए इधर उधर घूमा करते थे और बेखबर यात्रियों का गला घोंट कर उन्हे मार डालते थे। यह काम मेजर स्लीमन के सुपुर्द किया गया, जिसने थोड़े से ही समय मे ठगों के दलों को नष्ट कर दिया और उनके इस

शिशु-हत्या

घृणित पेशे को समूल उखाड़ फेंका। बैन्टिक ने राजपूतों में लडकियों को मार डालने की प्रथा को रोकने का भी प्रशसनीय और सफल प्रयत्न किया।

उसने एक और बहुत बड़ा परिवर्तन यह किया कि अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार को प्रोत्साहन दिया। सन १८१३ में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने अपने कर्मचारियों को एक लाख रुपया प्रतिवर्ष शिक्षा के निमित्त लगाने की हिदायत कर दी थी। अब तक यह धन देशी भाषाओं की शिक्षा मे खर्च किया जाता रहा था। बैन्टिक के शासन-काल मे इस बात पर खूब वाद-विवाद हुआ कि शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिये। उस समय संयोग से लार्ड मैकाज़े भी कलकत्ते की अँग्रेज़ी कौंसिल के सदस्य की हैसियत से भारत ही मे मौजूद था। उसने अँग्रेज़ी साहित्य और पाश्चात्य विज्ञान के अध्ययन का ज़ोर के साथ समर्थन किया। लार्ड बैन्टिक स्वयं भी उससे सहमत था। अतः अँग्रेज़ी को शिक्षा का मध्यम करार दिया गया। सन १८३५ मे एक विज्ञप्ति निकली जिसके अनुसार सम्पूर्ण स्कूलों और कालेजों में शिक्षा की पुरानी व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था कार्य में लाई जाने लगी। इस से भारत को यूरोपियन साहित्य के उपभोग करने का अवसर मिला, यद्यपि इस पद्धति में कुछ हानियां भी अवश्य थीं।

शिक्षा

राज्य विस्तार की नीति—बैन्टिक देशी रियासतो के मामलों में दखल नहीं देना चाहता था। पर खास खास मामलों में उसे ऐसा करना पड़ता था। उसने कुर्ग के राजा को—जिसके ज़ुल्म से प्रजा त्राहि त्राहि कर रही थी—उतार दिया, और प्रजा की अभिलाषा के अनुसार राज्य को ब्रिटिश राज्य मे मिला लिया। कछार

कुर्ग, कछार और मैसूर

दसवाँ अध्याय

ऑकलैंड और ऐलेनबॉरो

(१८३६–१८४२ तथा १८४२–१८४४)

अफगानिस्तान—ऑकलैंड के भारत में आने के साथ ही सिंध नदी के उस पार उत्तर-पश्चिम में फसाद शुरू होता है। 'मौजूदा अफ़गानिस्तान के राजवंश का प्रवर्त्तक पानीपत का विजेता अहमदशाह अब्दाली था। उसका एक पोता था—ज़मानशाह, जिसका ज़िक्र हम रणजीतसिंह के प्रसंग में कर आए हैं। इसे गद्दी से उतार दिया गया और उसकी आँखें फोड़ दी गईं। उसका एक और पोता था—शाहशुजा जिसने अपने योग्य मन्त्री वज़ीर अलीखां की सहायता से शासन किया। बैंटिंक के शासन काल में शाहशुजा को उसके भाई महमूद ने अफ़गानिस्तान से निकाल दिया था। इसके बाद शाह शुजा के मन्त्री वज़ीरअली के भाई, दोस्त मुहम्मद ने महमूद

शासक में परिवर्तन

इन कौन्सिल" कहलाया जाने लगा और उसकी कौन्सिल मे एक कानूनी सदस्य की भी वृद्धि की गई। लार्ड मेकाले—जिसने भारतीय दण्डविधान बनाया था—भारत का पहला कानूनी सदस्य था। अन्त मे यह विधान बनाया गया कि "भारत के किसी देशी निवासी या सम्राट की किसी जन्म की प्रजा को केवल अपने धर्म, जन्म स्थान, वर्ण या जाति के कारण कम्पनी के किसी भी पद से वंचित नहीं रक्खा जाएगा।"

सर चार्ल्स मेटकाफ़—सन् १८३५ मे लार्ड विलियम बैन्टिक चला गया और उसकी जगह सर चार्ल्स मेटकाफ़ आया। उसके शासन की सब से अधिक उल्लेखनीय घटना यह है कि प्रेस की स्वतन्त्रता पर से सारी बंदिशें उठा ली गईं। उसके इस कार्य के कारण डाइरेक्टरों ने उस पर अविश्वास प्रकट किया और उसने त्याग-पत्र दे दिया। उसकी जगह सन् १८३६ मे लार्ड आकलेंड की नियुक्ति हुई। अपने इस कार्य से सर मेटकाफ़ की भारतीयों मे बडी प्रतिष्ठा हुई।

प्रश्न

१. भारत के इतिहास में बैन्टिक के शासन का क्या महत्व है?

२. इस बात को साबित करो कि लार्ड बैन्टिक ने भारत मे स्थायी शांति स्थापित की।

३. सती प्रथा और ठगी पर संक्षिप्त नोट लिखो।

४. सर चार्ल्स मेटकाफ ने त्यागपत्र क्यों दिया।

इन कौन्सिल" कहलाया जाने लगा और उसकी कौन्सिल में एक कानूनी सदस्य की भी वृद्धि की गई। लार्ड मेकाले—जिसने भारतीय दण्डविधान बनाया था—भारत का पहला कानूनी सदस्य था। अन्त मे यह विधान बनाया गया कि "भारत के किसी देशी निवासी या सम्राट की किसी जन्म की प्रजा को केवल अपने धर्म, जन्म-स्थान, वर्ण या जाति के कारण कम्पनी के किसी भी पद से वंचित नहीं रक्खा जाएगा।"

सर चार्ल्स मेटकाफ़—सन् १८३५ मे लार्ड विलियम वैन्टिक चला गया और उसकी जगह सर चार्ल्स मेटकाफ़ आया। उसके शासन की सब से अधिक उल्लेखनीय घटना यह है कि प्रेस की स्वतन्त्रता पर से सारी बंदिशें उठा ली गईं। उसके इस कार्य के कारण डाइरेक्टरों ने उस पर अविश्वास प्रकट किया और उसने त्याग-पत्र दे दिया। उसकी जगह सन् १८३६ मे लार्ड आकलैंड की नियुक्ति हुई। अपने इस कार्य से सर मेटकाफ़ की भारतीयो मे बड़ी प्रतिष्ठा हुई।

प्रश्न

१. भारत के इतिहास में वैन्टिक के शासन का क्या महत्व है?

२. इस बात को साबित करो कि लार्ड वैन्टिक ने भारत में स्थायी शांति स्थापित की।

३. सती प्रथा और ठगी पर संक्षिप्त नोट लिखो।

४. सर चार्ल्स मैटकाफ ने त्यागपत्र क्यों दिया।

या जाड़े से खुद ही मर गए।

इस विपत्ति की खबर जब इङ्गलैंड पहुँची तो वहाँ आतंक छा गया। लार्ड आकलैंड को वापिस बुला लिया गया और उसकी जगह लार्ड एलेनबॉरॉ को भेजा गया।

लार्ड एलेनबॉरॉ (१८४२-१८४४)—नए गवर्नर जनरल का प्रधान कार्य अफ़ग़ानिस्तान से अंग्रेज़ों को छुटकारा दिलाना था। उसने कन्धार और जलालाबाद के अंग्रेज़ सैनिकों की सहायता के लिये ब्रिटिश सेना भेजी। वे अफगानो की बडी सेना से अब तक वीरता के साथ अपनी रक्षा करते रहे थे। अब दोनों सेनाएँ मिलकर काबुल की ओर बढ़ीं और काबुल पर उनका पुनः अधिकार हो गया। ब्रिटिश बन्दियो को बन्धनमुक्त कर दिया गया और अफ़ग़ानों के आक्रमण का बदला लेने के लिए बालाहिस्सार नामक काबुल का प्रधान बाज़ार तोपों से उड़ा दिया गया। इस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान मे दुबारा ब्रिटिश सत्ता स्थापित करने के बाद यह सेना भारत को वापस आगई।

दोस्त मुहम्मद पुन. गद्दी पर बैठा

शाहशुजा को अकबरखा के सिपाहियो ने मार डाला था। अतएव दोस्त मुहम्मद को अफ़ग़ानिस्तान मे वापस जाने की आज्ञा दे दी गई और उसे वहा का शासक मान लिया गया। इस प्रकार बीस हजार मनुष्यों का जीवन और डेढ़ करोड रुपया बिना किसी फल के नष्ट होगया।

सिन्ध पर विजय—सिन्ध का सबा तीन विभागों मे बँटा

हुआ था, इन पर तीन वलोची शासन करते थे, ये लोग अमीर कहलाते थे। इन अमीरों ने सन १८०६ मे अंग्रेज़ों के साथ सन्धि कर ली थी, जिस के अनुसार उनकी अंग्रेज़ों से मित्रता स्थापित हो गई थी और अमीरों ने अपने प्रदेशों में फरांसीसियों को न आने देने का वचन दे दिया था। सन १८३२ में उन्हें एक नए सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने को राज़ी कर लिया गया, जिसके अनुसार उन्होंने अंग्रेज़ों को सिन्ध में व्यापार करने की भी इजाज़त दे दी; परन्तु वे अपने देश में से उनकी फौजें गुज़रने देने के लिए अभी राज़ी न हुए थे। परन्तु उनकी अनिच्छा की कोई परवाह न करके अंग्रेज़ों की सेना सिन्ध मे से हो कर अफ़ग़ानिस्तान को बराबर जाती और सिन्ध की सड़कों और नदियों को अपने उपयोग में लाती रही। कुछ समय वाद अमीरों को एक नवीन सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करने को बाधित किया गया जिसके अनुसार उन्हे एक एक ब्रिटिश सेना अपने देशों में रखने और उनके गुज़ारे के लिए अपनी आय में से रकम देने को मजवूर होना पड़ा। अफ़ग़ान युद्ध के समाप्त होजाने के वाद अमीरों पर अंग्रेज़ो का विरोध करने का इल्ज़ाम लगाया गया और सर चार्ल्स नेपियर को—जिसे सिविल और मिलटरी के सम्पूर्ण अधिकार मिले हुए थे—इस अभियोग को जांच करने के लिए भेजा गया। उसने पहले ही से यह तय कर लिया था कि सिन्ध को ब्रिटिश राज्य में मिलाना अनिवार्य है, अतः उसने सिन्धियों के पक्ष की कोई परवाह न करके अमीरों को एक नई सुलह करने

पर बाध्य किया, जिसके अनुसार उन्हें अपने देशों का अधिकांश भाग अंग्रेज़ों के सुपुर्द कर देना पड़ा। इस अत्याचार ने अमीरों को युद्ध करने के लिये उकसाया। सन १८४३ की फ़रवरी में मियानी और उसके बाद दावो नामक स्थान पर सिन्धी सेना को मुट्ठी भर अंग्रेज़ सिपाहियो ने हरा दिया। अमीरों को गद्दी से उतार दिया गया और सिन्ध को ब्रिटिश राज्य मे मिला लिया गया। नेपियर को सिन्ध का पहला गवर्नर नियुक्त किया गया। इस मामले में सच-मुच ज्यादती से काम लिया गया था। स्वयं नेपियर भा उसे समझता था और उसने अपनी सैनिक सुलभ स्पष्टवादिता के साथ लिखा भी था—"हमें सिन्ध पर अधिकार करने का कोई हक़ नहीं है। पर हम ऐसा अवश्य करेंगे और यह बदमाशी हमारे लिये बड़ी लाभकारी, उपयोगी साथ ही लज्जाजनक सिद्ध होगी।" डाइरैक्टरों ने सिन्ध विजय की सारी कार्यवाही नापसन्द की, पर, फिर भी इस नए प्रदेश को अपने ही अधिकार मे रहने दिया।

मियानी और दावो

ग्वालियर—दौलतराव सिंधिया सन १८२६ मे मर गया और उसका धर्मपुत्र जनकोजी सन १८४३ में मरा। उसके कोई पुत्र नहीं था। अतएव उसकी विधवा ने गवर्नर जनरल की सम्मति से एक लडके को गोद ले लिया। अब यह समस्या उपस्थित हुई कि नाबालिग लड़के का रक्षक कौन बनेगा। इस पर अंग्रेज़ों और रानी में झगडा उठ खड़ा हुआ और रियासत के दरबार मे दलबन्दियां होने लगीं। अंग्रेज़ो के लिए सब से अधिक

ग्वालियर की सेना।

चिन्ता की बात यह थी कि ग्वालियर में उस समय ४०,००० सेना थी, जिसने अभी तक अंग्रेज़ों का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया था। यदि वह सेना सिक्खों के साथ मिल जाती तो एक नया और भारी उपद्रव खड़ा हो सकता था। इसलिए कोई न कोई कार्यवाही शीघ्र ही करना आवश्यक समझा गया।

सन १८४३ मे ब्रिटिश सेना ने ग्वालियर पर धावा बोल दिया और मराठा सेना को महाराजपुर मे हरा दिया। उसी दिन मराठा सेना का एक दूसरा भाग पनिआर में हराया गया। रानी ने आत्म-समर्पण कर दिया। एक नया सुलहनामा तैयार हुआ, जिसके अनुसार रियासत की सेना घटा कर ६,००० कर दी गई और शासन प्रबन्ध, लड़के के बालिग होने तक, कौन्सिल (कौन्सिल आफ़ रीजेन्सी) के सुपुर्द कर दिया गया। यह कौन्सिल रेज़ीडेन्ट के परामर्श से काम करने को बाध्य थी। इसके बाद फिर कोई झगड़ा नहीं हुआ और उस समय से अब तक ग्वालियर के राजा बराबर अँग्रेज़ों के मित्र रहे हैं।

महाराजपुर और पनिआर

इसके बाद ही लार्ड एलेनबारा को भारत से बुला लिया गया। उसकी आक्रमण की नीति से कम्पनी के डाइरेक्टरों को क्षण-भर का भी विश्राम नहीं मिल सका था। अतः वे उससे असंतुष्ट हो गए थे। वह सन १८४४ में भारत से चला गया और उसकी जगह सर हेनरी हार्डिंग आया जो बाद को लार्ड हार्डिंग हुआ।

प्रश्न

१. अफगानों के साथ पहला युद्ध किस कारण हुआ ? युद्ध का संक्षिप्त विवरण लिखो।

२. लार्ड आकलैंड के शासन प्रबन्ध पर एक नोट लिखो।

३. लार्ड एलिनबरा ने अपने शासन में कौन-सी नीति स्वीकार की थी। उसके शासन की प्रमुख घटनाएँ लिखो।

४. सिन्ध अंग्रेजी राज्य में कैसे मिलाया गया ?

ग्यारहवां अध्याय

लार्ड हार्डिंग (१८४४-१८४८)

(ब्रिटिश राज्य का पंजाब में विस्तार)

रणजीतसिंह के बाद पंजाब की स्थिति—रणजीतसिंह बड़ा प्रबल और कूटनीतिज्ञ शासक था। जब तक वह जीवित रहा, उसके विरुद्ध सिर उठाने का किसी को साहस न हुआ। अपनी चतुरता, विचार शक्ति और मनुष्यों की योग्यता जाँचने की बुद्धि की बदौलत वह अपने दरबारियों और सैनिकों पर निरन्तर रोबदाब कायम रख सका था। सन् १८३६ के जून मास में यह 'पञ्जाब केसरी' परलोक सिधारा। उसके बाद उसका राज्य भी, जिसका वह प्राण था शीघ्र ही नष्ट होकर धूल में मिल गया। उसकी मृत्यु के बाद के छः वर्षों में पञ्जाब में शान्ति और बुरे शासन का दौरदौरा रहा। रणजीतसिंह के सारे पुत्रों को एक एक करके सिक्ख सरदारों ने मार डाला। अन्त में उसके सबसे छोटे पुत्र दिलीपसिंह को गद्दी पर बैठाया।

गया और उसकी माता रानी जिंदां, अपने कृपापात्र लालसिंह की सहायता से उसके लिये शासन करने लगी। परन्तु खालसा सेना, जिसमें ७०,००० सिपाही थे, बड़ी उत्कृष्ट सेना थी और उसे काबू में रखना असम्भव हो गया था। रानी और

दलीपसिंह और रानी जिंदा

उसका मन्त्री लालसिंह भी कोई ऐसा उपाय सोच रहे थे, जिससे सेना को अपनी शक्ति काम में लाने का अवसर मिले। उन्होंने इस सेना को प्रोत्साहन दिया कि वह ब्रिटिश राज्य पर आक्रमण करे और पञ्जाब के अतिरिक्त अन्य भारत मे भी अपना सिक्का बैठाने का प्रयत्न करे। तदनुसार सन् १८४५ मे सिक्खों ने सतलुज नदी को, जो दोनों राज्यों की सीमा थी, पार कर लिया। यह एक तरह से युद्ध की घोषणा थी।

सिक्खों की पहली लड़ाई (१८४५–१८४६)—अंग्रेज़ो को अब तक भारत मे जितनी सेनाओं से पाला पड़ा

मुदकी और फीरोज़शाह

था, उनमें खालसा सेना सबसे अधिक भयंकर और शक्तिशाली थी। लार्ड हार्डिंग ने स्वयं एक विशाल सेना के साथ यात्रा की। उसके साथ कमाण्डर इन चीफ़ सर ह्यू गफ़ भी आ मिला। सन १८४५ के १८ दिसम्बर को मुदकी मे पहला युद्ध हुआ। बहुत घमासान लड़ाई हुई, परन्तु विजय अंग्रेज़ो की ही रही। यह सिक्खो के साथ पहला मोरचा था और बादकी लड़ाइयों ने साबित कर दिया कि सिक्ख साधारण लड़ाके नहीं हैं। मुदकी की लड़ाई के तीन

दिन बाद फ़ीरोजशाह की लड़ाई हुई। अंग्रेज़ों को भारत में ऐसे घोर और भयंकर युद्ध का शायद पहले कभी अवसर नहीं पड़ा था। २१ दिसम्बर की रात इतनी भयानक थी कि बहुत से अंग्रेज़ अफ़सरों ने सेनापति को वापिस भाग चलने की सलाह तक दे डाली।—"उस रात को भारत के भाग्य का पलड़ा कभी इधर झुकता था, कभी उधर।" पर दूसरे दिन सुबह को रंग बदला और यद्यपि सिक्खों ने अपूर्व शूरता से काम किया, तथापि जीत अंग्रेजों के ही हाथ रही। एक महीने बाद सर हैरी स्मिथ ने सिक्खों पर पुनः धावा कर दिया। इस बार भी अलीवाल के युद्ध क्षेत्र में उनके पैर पूरी तरह उखड़ गए और वे सतलुज के उस पार भागने को विवश हो गए। इसके बाद वे कई सप्ताह तक फ़ीरोज़पुर के पूर्व सबराओं में लड़ाई की तैयारी करते रहे। उन्होंने सतलुज पर नावों के पुल की एक मज़बूत किलेबन्दी की। यहीं पर सन् १८४६ की १० फरवरी को सिक्खों के साथ अंग्रेज़ों का अन्तिम युद्ध हुआ। इस युद्ध में भी सिक्ख बुरी तरह नष्ट हुए। जिस पुल पर से होकर वे भागने की बात सोच रहे थे, उसे नष्ट कर दिया गया और करीब दस हज़ार सिक्ख वहीं मारे गए। खालसा सेना की पूरी पराजय हुई। लार्ड हार्डिंग ने सोचा कि अभी पंजाब को मिलाने का उपयुक्त समय नहीं है। अतः उसने लाहौर में सिक्खों से सन्धि की। उसने एक ऐसी सिक्ख सरकार कायम कराने की नीति अपनाई, जो सेना और राज्य विस्तार की दृष्टि

अलीवाल और सबराओं

से पहले की अपेक्षा कमज़ोर हो। सतलुज और व्यास के बीच का जालंधर-दोआब अँग्रेज़ों के राज्य मे मिला लिया गया। सर हैनरी लारेंस नामक एक ब्रिटिश रेज़ीडेण्ट को लाहौर मे नियुक्त किया गया और सिक्खो की सेना घटा कर २०,००० कर दी गई। बाकी शासन-प्रबन्ध बदस्तूर रहा। सिक्ख सरदारों की इच्छा से ब्रिटिश सेना उस वर्ष के अन्त तक लाहौर मे ही रही। बाद को एक और सन्धि की गई और उसमे ब्रिटिश सेना के लाहौर में रहने की अवधि और भी बढ़ा दी गई। हार्डिंग ने सिक्खों से युद्धक्षति स्वरूप डेढ़ करोड रुपया मांगा। पर लाहौर के राजकोष मे केवल पचास लाख रुपया ही शेष था। काश्मीर और जम्मू के शासक गुलावसिंह ने प्रस्ताव किया कि यदि उसे अपने प्रांत का स्वतन्त्र शासक मान लिया जाय तो बाकी रकम वह अदा कर देगा। यह बात स्वीकार कर ली गई और उस समय से काश्मीर का शासन महाराजा गुलाबसिंह के वंशजो के ही अधिकार मे है।

लाहौर की सन्धि

काश्मीर का राजा गुलाबसिंह

सन १८४८ मे हार्डिंग भारत से लौट गया। यद्यपि वह युद्धों में ही फँसा रहा, पर उसने कुछ अन्य लाभदायक कार्य भी किए। उसने भारत मे रेलवे की योजना तैयार की, गङ्गा की नहर खुदवाने की सिफ़ारिश की, देशी भाषाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया और देशी रियासतों में सती और शिशुहत्या को रोकने का प्रयत्न किया।

प्रश्न

१ रणजीतसिंह के मरने के बाद पंजाब की क्या दशा थी ?

२. सिक्खों का पहला युद्ध किन कारणों से हुआ ? उसका परिणाम क्या हुआ ?

३. काश्मीर के वर्तमान राजवंश का प्रारम्भ कैसे हुआ ?

बारहवां अध्याय

लार्ड डलहौज़ी (१८४८-१८५६)

लार्ड हार्डिंग ने अपने उत्तराधिकारी लार्ड डलहौज़ी को अधिकार सौंपते हुए कहा कि आगामी सात वर्ष तक भारत में एक भी गोली चलाने की ज़रूरत न पड़ेगी।

भविष्य-वाणी गलत निकली

परन्तु बाद की घटनाओं ने लार्ड हार्डिंग की भविष्यवाणी को ग़लत साबित कर दिया। उसने कहा था कि सात वर्ष तक एक भी गोली न चलानी पड़ेगी, परन्तु वही सात वर्ष देश में घमासान युद्धों के वर्ष सिद्ध हुए। डलहौज़ी को शासनभार सम्हाले तीन महीने ही बीते थे कि मुलतान के शासक मूलराज के यहां सन १८४८ में दो अंग्रेज़ अफ़सरों की हत्या होगई। यह दूसरे सिक्ख-युद्ध की भूमिका थी।

मूलराज से पंजाब सरकार ने रियासत का हिसाब कित मांगा था, परन्तु उसने इसे अपना अपमान समझ कर इस्तीफ़ा पेश कर दिया था। तब उसे ब्रिटिश रेज़ीडेण्ट के प्रभाव से अपने पद से हटा दिया गया और उक्त

मूलराज

दो अंग्रेज़ों को उससे शासन का चार्ज लेने के लिए भेजा गया। परन्तु मुलतान में उनको हत्या कर दी गई। उसकी जगह एक सिक्ख गवर्नर की नियुक्ति होने वाली थी। उन दोनों अंग्रेज़ अफ़सरों की हत्या से सिक्खों मे बडा उत्साह उत्पन्न हो गया। यद्यपि सिक्ख हार चुके थे, परन्तु उनके हृदयों में प्रतिहिंसा की आग अभी तक जल रही थी।

मूलराज ने विद्रोह का झण्डा सन १८४८ में खड़ा किया था, परन्तु कमाण्डर-इन-चीफ़ लार्ड गफ ने युद्ध का कार्य जाड़ों तक के लिए मुल्तवी कर दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि इस स्थानीय विद्रोह ने फैलकर विशाल रूप धारण कर लिया। हर्बर्ट एडवर्ड्स ने, जो सिक्ख कौन्सिल आफ़ रीजेन्सी का सदस्य था, कुछ सैनिक बल इकट्ठा करके मूल-राज पर धावा बोल दिया, और उसे दो हमलों मे ही हरा दिया। लाहौर के रेज़ीडेण्ट ने शेरसिंह को एक भारी सेना देकर मुल्तान के चारों ओर घेरा डाल कर पड़ी हुई अंग्रेज़ी सेना की सहायता के लिए भेजा, पर वह ब्रिटिश सेना की सहायता करने की बजाय दुश्मनों से मिल गया और इस प्रकार ब्रिटिश सेना को लाचार हो कर घेरा उठा लेना पड़ा। सिक्खों ने दोस्त मुहम्मद को पेशावर का लालच देकर उसकी सहायता भी प्राप्त कर ली थी।

आरम्भ

सिक्खों का दूसरा युद्ध (१८४८–१८४९)— इस समय के सम्पूर्ण बड़े बड़े सिक्ख सरदार अंग्रेज़ो के विरुद्ध शस्त्र लेकर तैयार हो गए और डलहौज़ी ने भी युद्ध करने का

निश्चय किया। उसने कलकत्ते में भाषण देते हुए कहा कि उसकी इच्छा युद्ध करने की नहीं थी, पर चूं कि सिक्ख युद्ध चाहते हैं, इस लिए उनसे युद्ध करना ही पडेगा और यह युद्ध खूब डट कर किया जायगा।

लार्ड गफ़ २० ००० सेना लेकर चिलियावाला पहुँचा, जहां सिक्ख मोर्चाबंदी किए तैयार थे। इस लडाई मे भी सिक्खों ने अपना जौहर दिखाया और यद्यपि अन्त में जीत अंग्रेजो की ही रही, तथापि युद्ध मे उनकी इतनी भारी क्षति हुई कि सफलता का पलडा सिक्खों के पक्ष में ही झुका हुआ दिखाई देता है। इस लडाई के विषय मे लार्ड डलहौजी ने कहा था-"हमारी यदि ऐसी ही एक आध विजय और हो जाए तो हम बरबाद हो जाएगे।" इङ्गलैंड के अधिकारियों ने सिन्ध विजेता सर चार्ल्स नेपियर को लार्ड गफ़ का स्थान लेने के लिए भेजा, परन्तु उसके भारत मे पहुँचने तक लार्ड गफ़ ने गुजरात की लडाई मे सिक्ख-शक्ति को छिन्न भिन्न करके अपनी खोई हुई प्रसिद्धि पुन: प्राप्त करली थी। उधर मुलतान पर आक्रमण किया गया और मूलराज को गिरफ्तार कर लिया गया। गुजरात की लडाई के कुछ दिनो बाद सिक्खो ने आत्मसमर्पण कर दिया और सिक्ख युद्ध का अन्त हो गया।

चिलियावाला

गुजरात

पंजाब की व्यवस्था—हार्डिंग ने पञ्जाब के विषय में जो नीति बरती थी, वह असफल सिद्ध हो चुकी थी अब

पजाब मिला लिया गया

डलहौज़ी उस नीति का और अधिक प्रयोग नहीं करना चाहता था। उसने पञ्जाब को ब्रिटिश राज्य में मिलाने का निश्चय कर लिया और यह कार्य सन १८४६ मे कर लिया गया। महाराजा दलीपसिंह को पैन्शन दे दी गई और पजाब प्रान्त का प्रबन्ध एक बोर्ड को सौंप दिया गया, जिसमें हैनरी और जान लारेंस नामक दो प्रसिद्ध भाई और एक अन्य सिविलियन थे। तब यहां सड़कें और नहरें बनवाई गई, ज़मीन का लगान बहुत कम कर दिया गया और अन्य बहुत से टैक्स भी घटा दिये गए। कुछ ही वर्षों के भीतर

परिवर्तन

चारों ओर शान्ति दिखाई देने लगी और सिक्ख अंग्रेज़ों की भक्त प्रजा बन गए। उस समय यह बात अच्छी तरह साबित होगई, जब सन १८५७ के गदर की लहर मे भी पञ्जाब अचल रूप से खड़ा रहा और उस अवसर पर अंग्रेज़ लोग पञ्जाब को 'भारत का रक्षक प्रांत" कहने लगे। सन १८५२ मे यह बोर्ड तोड़ दिया गया और सर जान लारेंस को पञ्जाब का चीफ़ कमिश्नर बना दिया गया।

बर्मा की दूसरी लड़ाई (१८५२)—बर्मियों को एमहर्स्ट के ज़माने मे जो पराजय हुई थी, उससे भी वे सदा के लिये दब

कारण

नहीं गए थे। उनमें अभी तक अंग्रेज़ों के लिए घृणा और बदला लेने के भाव थे। इसी कारण अंग्रेज़ व्यापारियों के साथ रंगून के बंदरगाह पर बुरा बर्ताव किया जाता था, इस पर जब अंग्रेज़ दूत बर्मा के राज दरबार में क्षतिपूर्ति के

पजाब मिला लिया गया

डलहौज़ी उस नीति का और अधिक प्रयोग करना चाहता था । उसने पञ्जाब को ब्रि[illegible] राज्य मे मिलाने का निश्चय कर लिया और कार्य सन १८४६ मे कर लिया गया । महाराजा दलीपसि[illegible] पैन्शन दे दी गई और पजाब प्रान्त का प्रबन्ध एक बोर्ड को दिया गया, जिसमे हैनरी और जान लारैंस नामक दो [illegible] भाई और एक अन्य सिविलियन थे । तब यहां सड़कें और [illegible] बनवाई गईं, ज़मीन का लगान बहुत कम कर दिया गया अन्य बहुत से टैक्स भी घटा दिये गए । कुछ ही वर्षों के

परिवर्तन

चारों ओर शान्ति दिखाई देने लगी सिक्ख अंग्रेज़ों की भक्त प्रजा बन गए [illegible] समय यह बात अच्छी तरह साबित होगई, जब सन १[illegible] गदर की लहर में भी पञ्जाब अचल रूप से खड़ा रहा [illegible] अवसर पर अंग्रेज़ लोग पञ्जाब को " भारत का रक्षक प्रान" [illegible] लगे । सन १८५२ में यह बोर्ड तोड़ दिया गया और [illegible] लारैंस को पञ्जाब का चीफ़ कमिश्नर बना दिया गया ।

बर्मा की दूसरी लड़ाई (१८५२)—बर्मियों को [illegible] के ज़माने मे जो पराजय हुई थी, उनसे भी वे सदा के [illegible]

कारण

नहीं गए थे । उनमें अभी तक अंग्रेज़ों के [illegible] और बदला लेने के भाव थे । इसी कारण व्यापारियों के साथ रंगून के दरगाह पर बुरा बर्ताव कि[illegible] या, इस पर जब अंग्रेज़ दूत बर्मा के राज दरबार में [illegible]

करेंगे तो उन्हें गद्दी से उतार दिया जायगा। परन्तु नवाब की ओर से इन चेतावनियों की तरफ़ कुछ ध्यान नहीं दिया गया था। अब डलहौज़ी ने प्रस्ताव किया कि अवध के शासन का भार कम्पनी खुद ग्रहण करे। चाहे नवाब वाजिद अलीशाह के पास उसका पद और उपाधि वैसे ही रहने दिये जाएं। पर नवाब के विषय में डलहौज़ी की जो राय थी वह औरों को पसन्द न आई। इस पर अवध को भी अंग्रेज़ी राज्य में शामिल कर लिया गया। नवाब को लखनऊ से हटा कर कलकत्ते भेज दिया गया और उसकी बीस लाख रुपया वार्षिक पैन्शन नियत कर दी गई।

बरार

निज़ाम ने कम्पनी को हैदराबाद में ब्रिटिश सेना के व्यय की बहुत बड़ी रकम देनी थी, अतः उस रकम के भुगतान में उससे बरार ले लिया गया।

जागीरें और पदवियां बन्द करदी गईं

डलहौज़ी ने कुछ जागीरें और पैन्शनें बन्द कर दी थीं। अर्काट के नवाब और तंजोर के राजा से शासन का अधिकार बहुत दिन पहले ही ले लिया गया था, जब उनका देहान्त होगया तो उनकी पेन्शनें और उपाधियां बन्द करदी गईं। पदच्युत पेशवा बाजीराव के मरने पर डलहौज़ी ने उसके धर्मपुत्र धोंदुपंत को, जो नाना साहब के नाम से भी प्रसिद्ध है, आठ लाख वार्षिक पेन्शन देते रहने से इनकार कर दिया। गवर्नर जनरल ने यह भी योजना पेश की थी कि शाह आलम के पोते बहादुरशाह के मरने पर, जो इस समय दिल्ली का नाममात्र का बादशाह रह गया था, उसके

वैन्टिक के समय में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने स्वीकार किया था, इसका असली उद्देश रियासतोंका अन्त करना था। परन्तु डलहौज़ी के पूर्ववर्ती शासकों ने, जहां तक हो सका, केवल इस आधार पर रियासतें शामिल करने की नीति से काम नहीं लिया था। परन्तु डलहौज़ी ने इस शामिल करने के विधान को, जहां तक सम्भव हो सका, अपनाया और उसने इसका एक भी अवसर हाथ से नहीं जाने दिया। उसके शासनकाल मे अनेक मातहत देशी नरेश, विना किसी उत्तराधिकारी को छोड़े, मर गए। लार्ड डलहौज़ी ने इन अवसरों से लाभ उठाया और अपने साम्राज्य का विना किसी तकलीफ़ के खूब विस्तार किया। सतारा और झांसी को इस आधार पर अंग्रेज़ी साम्राज्य में शामिल कर लिया गया कि उनके राजाओं ने धर्मपुत्र को गोद लेते समय अंग्रेज़ों की अनुमति नही ली थी। नागपुर को सन १८५६ मे इसलिए मिला लिया गया कि वहां की गद्दी का कोई सीधा उत्तराधिकारी नहीं रहा था। करौली नामक रियासत के विषय में होम गवर्नमेंट ने गवर्नर जनरल की आज्ञा रद्द कर दी और घोषणा की कि वह मातहत रियासत नहीं है।

सतारा, झांसी और नागपुर मिला लिए गये

सन १८५६ में अवध को अंग्रेज़ी राज्य में इस आधार पर शामिल कर लिया गया कि वहाँ का शासन बड़ा दोषपूर्ण और बुरा था। एक के बाद दूसरे नवाब को धमकियां दी जाती रही थी कि यदि वे शासन प्रबन्ध मे सुधार नहीं

अवध

करेंगे तो उन्हें गद्दी से उतार दिया जायगा। परन्तु नवाब की ओर से इन चेतावनियों की तरफ़ कुछ ध्यान नहीं दिया गया था। अब डलहौज़ी ने प्रस्ताव किया कि अवध के शासन का भार कम्पनी ख़ुद ग्रहण करे। चाहे नवाब वाजिद अलीशाह के पास उसका पद और उपाधि वैसे ही रहने दिये जाएं। पर नवाब के विषय मे डलहौज़ी की जो राय थी वह औरों को पसन्द न आई। इस पर अवध को भी अंग्रेज़ी राज्य मे शामिल कर लिया गया। नवाब को लखनऊ से हटा कर कलकत्ते भेज दिया गया और उसकी बीस लाख रुपया वार्षिक पैन्शन नियत कर दी गई।

बरार

निज़ाम ने कम्पनी को हैदराबाद मे ब्रिटिश सेना के व्यय की बहुत बड़ी रकम देनी थी, अतः उस रकम के भुगतान मे उससे बरार ले लिया गया।

डलहौजी ने कुछ जागीरें और पैन्शनें बन्द कर दी थीं। अर्काट के नवाब और तंजोर के राजा से शासन का अधिकार बहुत दिन पहले ही ले लिया गया था, जब उनका देहान्त होगया तो उनकी पेन्शनें और उपाधियां बन्द करदी गईं। पदच्युत पेशवा बाजीराव के मरने पर डलहौज़ी ने उसके धर्मपुत्र दोंदुपंत को, जो नाना साहब के नाम से भी प्रसिद्ध है, आठ लाख वार्षिक पेन्शन देते रहने से इनकार कर दिया। गवर्नर जनरल ने यह भी योजना पेश की थी कि शाह आलम के पोते बहादुरशाह के मरने पर, जो इस समय दिल्ली का नाममात्र का बादशाह रह गया था, उसके

जागीरें और पदवियां बन्द करदी गईं

वंशजों से राजा की उपाधि छीन ली जाय और उसके परिवार से किला खाली करा लिया जाय। डाइरेक्टरों ने इनमें से अंतिम दो योजनाओं को मंजूर कर लिया।

राज्य का विस्तार—यह हम देख ही आये हैं कि किस प्रकार लार्ड डलहौज़ी ने युद्ध करने और रियासतें नष्ट करने की नीति से ब्रिटिश साम्राज्य को भारत मे लगभग वह रूप दे दिया, जिसमें हम उसे इस समय देख रहे हैं। उसके शासनकाल में ही भारत के वर्तमान राजनीतिक विभाग का रूप निश्चित हुआ।

रेल, तार और डाकखाना।

रेल और तार का जो जाल आज कल देश भर में बिछा हुआ है, डलहौज़ी को उनका जन्मदाता कहा जाता है, क्योंकि इन दोनो का आरम्भ उसी ने किया था। पब्लिक-वर्क्स डिपार्टमेंट भी उसी ने बनाया था और गंगा की नहर का बनाना भी उसी के समय में आरम्भ हुआ था। उसने सिंचाई के लिए अनेक व्यवस्थाएं की थीं। डाकखाने के महकमे का वर्तमान रूप भी उसी का दिया हुआ है। उसने भारतवर्ष भर में आध आना चिट्ठी का प्रबन्ध जारी किया।

इसके अतिरिक्त उसने अन्य भी अनेक उपयोगी काम किए। उसने भारतीयों की शिक्षा के लिए असाधारण यत्न किया।

शिक्षा

उत्तर पश्चिम प्रांतों मे देशी भाषा की शिक्षा की व्यवस्था करने के अतिरिक्त सर चार्ल्स वुड (जो उस समय शासन परिषद का सभापति था) के प्रसिद्ध खरीते को

भी, जो भारत की शिक्षा के विषय पर बड़ा महत्वपूर्ण खरीता है, उसी ने तैयार करवाया था। इसमें प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर यूनिवर्सिटी की शिक्षा तक, जहां तक सम्भव हो सके, अंग्रेज़ी और देशी भाषा की मिश्रित शिक्षा का प्रतिपादन किया गया था।

नवीन अधिकारपत्र (१८५३)—कम्पनी को नया अधिकारपत्र दिया गया और उसमे जो जो परिवर्तन किए गए, उनका कारण लार्ड डलहौज़ी था। भारत के प्रदेशो को कम्पनी के शासन में उस समय तक रखने की बात लिखी गई "जब तक पार्लियामेंट कुछ और निश्चय न करे।" डाइरेक्टरों के संघ को सिविल सर्विस की नियुक्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया और उक्त सेवा मे नियुक्ति के लिए प्रतियोगिता की परीक्षा आवश्यक हो गई। गवर्नर जनरल को बङ्गाल के शासन भार से मुक्त कर दिया गया और शासन प्रबन्ध एक लेफ्टिनैएट गवर्नर के हाथों मे सौप दिया गया। प्रत्येक प्रांत से एक सदस्य को गवर्नर जनरल की कौन्सिल मे निर्वाचित किया गया, जिससे भारत मे 'शिशु पार्लियामेण्ट' का जन्म हुआ—हा, भारतीय दृष्टिकोण से वह कौन्सिल लोकहित की सच्ची प्रतिनिधि नहीं कही जा सकती थी, क्योंकि उसके सारे सदस्य सरकारी होते थे।

नए परिवर्तन

सन १८५६ के मार्च में डलहौज़ी ने भारत से विदा ली। कठिन परिश्रम से उसका स्वास्थ्य नष्ट होगया था। इङ्गलैंड पहुँचने

उसके कार्य पर स्वदेश के लिए उसकी अमूल्य सेवाओं के बदले में उसे अनेक प्रकार से सम्मानित किया गया। परन्तु इसके कुछ ही समय बाद भारतवर्ष मे भयंकर विद्रोह उठ खड़ा हुआ और तब डलहौज़ी की नीति की तीव्र आलोचना की जाने लगी। इससे उसके कमज़ोर स्वास्थ्य पर और भी घातक प्रभाव पड़ा और वह १९ दिसम्बर सन १८६० को मर गया।

डलहौज़ी की गणना ब्रिटिश साम्राज्य के स्थापकों में की जाती है। उसने भारत में बहुत से सर्वजन हितकारी काम भी किए थे। हम पहले ही कह चुके हैं कि भारत के वर्तमान स्वरूप का जन्मदाता वही था। अपने शासन मे वह अनथक रूप से और सब दिशाओं में काम करता रहा। परन्तु उसके राजनीतिक कार्य इतने उग्र थे कि बहुत से भारतीयों में उनके द्वारा तीव्र प्रतिहिंसा की भावना जाग गई। खास तौर से जिन राजाओं को उसने पदच्युत किया था, या जिनकी वृत्तिया बन्द की थीं, वे अंग्रेज़ी राज्य के कट्टर शत्रु बन गए और उसका परिणाम सन १८५७ के गदर के रूप मे प्रकट हुआ।

प्रश्न

१. सिक्खों की दूसरी लड़ाई के क्या कारण थे ? पंजाब को ब्रिटिश राज्य में मिलाने का संक्षिप्त विवरण लिखो।

२. संक्षेप से बर्मा के दूसरे युद्ध का हाल लिखो।

३. "लैप्स के विधान" से तुम क्या समझते हो ? डलहौज़ी ने

इस विधान की सहायता से जितने प्रदेशों को ब्रिटिश राज्य में मिलाया था, उनके नाम लिखो।

४. लार्ड डलहौजी के समय में भारत ने जो भौतिक और आर्थिक उन्नति की, उसका विवरण लिखो।

५. अंग्रेजों ने मुलतान को अपने राज्य मे कैसे मिलाया।

तेरहवां अध्याय

लार्ड कैनिंग (१८५६-१८५८)

सन ५७ का विद्रोह

डलहौज़ी के बाद जब लार्ड कैनिंग ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली, तो उस समय सरसरी निगाह से देखने पर

भारत सरसरी निगाह से देखने में शांत था

तो भारत की अवस्था बिल्कुल शांत प्रतीत होती थी, परन्तु वस्तुतः स्थिति यह नहीं थी। ऐसे लोग भी थे, जो ताड़ गए थे कि असली स्थिति अन्दर ही अन्दर भयंकर हो गई है। जब लार्ड कैनिंग को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने, उसके भारत में आने से पहले, सम्मान-प्रदर्शनार्थ भोज दिया तो उस अवसर पर उसने जो कुछ कहा, वह बाद में अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। उसने कहा—"यह भी पूरी तरह सम्भव है कि भारतवर्ष के आकाश में जो यद्यपि आजकल बिल्कुल शांत दिखाई पड़ रहा है, शीघ्र ही एक बादल दिखाई देने लगे, जो आरम्भ में एक आदमी के हाथ

से अधिक बड़ा न हो, परन्तु बाद मे ऐसा भयंकर रूप धारण कर ले कि वहाँ हमारी बर्बादी के लक्षण दिखाई देने लगें और उसका मुकाबला करने में हम बिल्कुल अशक्त साबित हों।" ऐसे तूफ़ान के चिन्ह उत्तर, पश्चिम की ओर से दिखाई देने लगे थे। फ़ारस वालों ने हिरात पर अधिकार कर लिया था, जो अफ़ग़ानिस्तान की कुंजी समझा जाता था। कैनिंग को फारस की खाड़ी से एक सेना भेज कर युद्ध शुरू करना पड़ा। फ़ारस का शाह हार गया और उसने हेरात से अपना सम्बन्ध अलग कर लिया।

गदर और उसके कारण—भारत मे भी अशांति की सामग्री काफ़ी मौजूद थी। भारत मे पाश्चात्य तरीको का इस्तेमाल शुरू हो जाने से लोगो के दिलो मे सन्देह पैदा हो गया था कि सरकार सब जातियो को धर्म-भ्रष्ट करना चाहती है और ईसाई धर्म के सिवाय और किसी को नहीं रखना चाहती। रेल, तार पाश्चात्य शिक्षा और अन्य अनेक पुराने रातिरिवाजों के निषेध से लोगो ने समझा कि बस, सरकार का यही एक उद्देश्य है–सब को ईसाई बनाना।

सामाजिक अशांति

जनसाधारण की इस प्रकार की भावनाओं से अपना राजनीतिक उद्देश सिद्ध करने वालों की भी कमी नहीं थी। सब से पहले मुगल सम्राट ही था, जो अच्छी तरह जानता था कि अब वह राजमहल में इने गिने दिन ही रह पायगा। इसके बाद मृत पेशवा का धर्मपुत्र नाना साहब था जिसकी पैन्शन बन्द कर दी गई

राज नीतिक असुविधाएं

थी। झांसी की युवती रानी भी असन्तुष्ट थी। असन्तोष की इस लहर में जो कुछ कसर बाकी रह गई थी, उसे मुन्तक़िल की नीति ने पूरा कर दिया अन्य देशी राजाओं को अपने सम्वन्ध मे भी यह आशंका होने लगी कि जब ब्रिटिश सरकार राज्य वढ़ाने की नीति पर उतारू है तो न मालूम कव हमारी भी यही दशा हो जाय।

सैनिक अशांति

उधर सिपाहियों की अपनी कुछ निजी शिकायतें भी थीं। जो सारी शिकायतो के साथ मिल कर वहुत गम्भीर हो गई थीं। जनरल सर्विस एन्लिस्टमेंट के अनुसार, जिसे कैनिंग के शासन काल मे पास किया गया था, प्रत्येक सिपाही को आवश्यकता पड़ने पर कहीं भी भेजा जा सकता था। यह विधान सिपाहियों को अच्छा नहीं लगा। विशेषकर उच्च जाति के ब्राह्मण इससे वहुत असन्तुष्ट हुए क्योंकि वे समुद्र यात्रा करना धर्म विरुद्ध समझते थे। हिन्दुस्तानी सिपाही संख्या में अंग्रेज़ सैनिको से पाँचगुने थे, इसलिये उन्हें अपनी शक्ति में विश्वास हो गया। अर्काट और पलासी के युद्ध के समय से अंग्रेज़ों को अजेय समझा जाता था, उस धारणा को अफ़गान युद्ध, सिक्खों के अपूर्व शौर्य्य और क्रीमियन युद्ध मे अंग्रेज़ो की सामयिक हार से गहरा धक्का लगा था। अंग्रेज़ों के पतन की इन किम्वदन्तियों को इस तरह की पुरानी भविष्य-वाणियो से और भी वल मिल गया कि अंग्रेज़ो की हुकूमत पलासी की लड़ाई के वाद १०० वर्ष तक ही रहेगी और अव १०० वर्ष

समाप्त हो गए थे।

मसाला तैयार था, आग लगने की देर थी। यह काम सेना में एक नए ढङ्ग की बन्दूक के इस्तेमाल किए जाने से खुदबखुद ही हो गया। इस बन्दूक के कारतूस के काग़ज़ो सिरे पर चिकनाहट लगी होती थी और उसे इस्तेमाल करने से पहले दांतों से फाड़ना पड़ता था।

विद्रोह का प्रत्यक्ष कारण

उस चिकनाहट मे जानवरों की चर्बी इस्तेमाल की गई थी, अतः हिन्दु और मुसलमान दोनो जाति के सिपाहियो को विश्वास हो गया कि यह सब उन्हे धर्मभ्रष्ट करने के लिए किया जा रहा है। मामला समझाने और ग़लती को दुरुस्त करने की भरसक कोशिश की गई। कारतूस को दांत से फाडने की आज्ञा वापिस ले ली गई, चिकने कारतूस का उपयोग बन्द कर दिया गया, पर जो बात होनी थी, वह हो चुकी थी.

विद्रोह का आरम्भ सन १८५७ की १० मई को मेरठ की छावनी से हुआ। यहाँ पर कुछ सिपाहियो ने चिकने कारतूस इस्तेमाल करने से इनकार किया। उन्हे जेल में डाल दिया गया। इस पर सारी सेना एकत्र हो गई। उसने अपने अफ़सरो को कत्ल कर डाला, जेलखाना तोड डाला, अपने साथियों को मुक्त कर दिया और दिल्ली जाकर वहाँ मुग़ल बादशाह (बहादुरशाह) को देश का शाहशाह घोषित कर दिया। इस आग की चिनगारी सारे उत्तर पश्चिम प्रांत (सयुक्तप्रात), अवध और निचले बङ्गाल तक फैल गई। पर सर जानलारैन्स के शासन की

मेरठ

पंजाब शांत रहा।

बदौलत पंजाब का अधिकांश भाग शान्त और राज-भक्त ही बना रहा। तब से केवल आठ वर्ष ही पहले सिक्ख अंग्रेज़ों के घोर शत्रु थे, पर अब वे अंग्रेज़ों के शत्रुओं के विरुद्ध हथियार उठाने को तैयार हो गए। पंजाब न केवल तटस्थ रहा, परन्तु उसने विद्रोह को शांत करने में अंग्रेज़ों को मदद भी दी।

गदर के केन्द्रस्थल तीन थे—कानपुर, लखनऊ और दिल्ली। कानपुर में विद्रोहियों का नेतृत्व नाना साहब ने ग्रहण किया और

कानपुर के नाना साहब

ब्रिटिश सेना का जीवन उसकी दया पर निर्भर रह गया। सैकड़ों यूरोपियन, जिनमें स्त्री और बच्चे भी शामिल थे तलवार के घाट पार उतार दिए गए। नाना साहब के अनुयाइयों को हैवलाक के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने हरा दिया, पर वह स्वयं किसी प्रकार भाग निकला। विद्रोही

लखनऊ

लखनऊ के चारो ओर घेरा डाले पड़े थे। यूरोपियन लोगो ने रेजीडेन्सी मे पनाह ली, जहां सर हैनरी लारेन्स की मृत्यु होने पर वे उस समय तक वीरता के साथ अपनी रक्षा करते रहे, जब तक जनरल हैवलाक और औटराम ने आकर उन्हें छुटकारा न दिलाया। पर इस छुटकारा दिलाने वाली सेना को भी सर कालिन कैम्पबेल के आगमन तक, सब के साथ रेजीडेन्सी मे ही घिरे रहना पड़ा। दिल्ली ने घेरे से तीन महीने तक अपनी रक्षा की और अन्त मे उसे छुटकारा मिला और लोग निश्चिन्त हुए। दिल्ली पर पुनः अधिकार करने का श्रेय सर जान

दिल्ली

लारेन्स को है, जिसने फ़ौजों पर फ़ौजें भेजना जारी रक्खा। आक्रमणकारियों में प्रमुख व्यक्ति जान निकलसन था, जो ठीक विजय के अवसर पर ही मारा गया। इसके बाद ही मुगल सम्राट के लड़को को गिरफ्तार कर लिया गया और स्वयं सम्राट को भी कैद करके ब्रिटिश बर्मा मे भेज दिया गया। मध्य भारत और बुन्देलखण्ड के विद्रोहियों के नेता तातिया टोपी और झांसी की रानी थे। झांसी की रानी बड़ी वीरता के साथ लड़ी और वीरता के साथ युद्ध मे काम आई। तातिया अंग्रेज़ों के कब्ज़े मे आगया और उसे फासी दे दी गई। मुगल सम्राट के दोनों पुत्रो को दिल्ली में सरे बाज़ार फासी पर लटका दिया गया। इस तरह विद्रोह को दबा दिया गया।

सारे विद्रोह मे गवर्नर जनरल ने अपूर्व सयम से काम लिया। उसने बड़े से बड़े खतरे मे भी अपनी बुद्धि को उद्विग्न नही होने दिया। देश मे पुनः इतनी शाति स्थापित हो जाने का मुख्य श्रेय उसी को है।

शासनाधिकार में परिवर्तन

इस गदर का तत्कालिक फल यह हुआ कि भारत का शासन कम्पनी के हाथ से निकल कर साम्राज्ञी विक्टोरिया के हाथ में चला गया। २३ अगस्त सन १८५८ को पास किए गए पार्लियामेण्ट के एक विधान के अनुसार डाइरेक्टरों का बोर्ड और शासन-परिषद् तोड़ दिए गए और उनके स्थान पर भारत मन्त्री की न युक्ति हुई और उसकी सहायता के लिए पन्द्रह सदस्यों की एक

कौन्सिल नियुक्त की गई जो इण्डिया कौन्सिल कहलाई जाने लगी। गवर्नर जनरल को वायसराय की पदवी मिली और पहला वायसराय लार्ड कैनिंग नियुक्त हुआ।

भारत मे इस अधिकार-परिवर्तन की घोषणा महारानी विक्टोरिया के प्रसिद्ध घोषणापत्र द्वारा १ नवम्बर सन १८५८ को की गई। यह अंग्रेज़ी भारत के अधिकारों का घोषणापत्र कहलाता है। इसमें देशी नरेशों के अधिकारो और सुविधाओं की रक्षा करने का वचन दिया गया और हत्या के अपराधियों को छोड़ कर बाकी सारे विद्रोहियों को क्षमा कर दिया गया।

विक्टोरिया का घोषणा-पत्र

महारानी विक्टोरिया की इस प्रसिद्ध घोषणामे कहा गया था—"हमारी सम्पूर्ण प्रजाका प्रत्येक भारतीय चाहे वह किसी भी वर्ण, जाति, जन्म या धर्म का क्यों न हो—राज्य का कोई भी पद अपनी योग्यता के बल पर प्राप्त कर सकता है। इसमें किसी तरह की रुकावट या पक्षपात न किया जायगा। जो जिस पद के योग्य होगा, वह उस पर नियुक्त किया जा सकेगा।" यह घोषणा सन १८३३ वाली घोषणा का अधिक प्रामाणिक और उत्तम स्वरूप था।

इस घोषणापत्र के अन्त में आश्वासन दिया गया कि प्रजा की भौतिक और नैतिक उन्नति के लिए हर तरह का उद्योग किया जायगा।

चौदहवां अध्याय

लार्ड कैनिंग से लार्ड नार्थब्रुक तक

(१८५८ से १८७६ तक)

लार्ड कैनिंग (१८५८–१८६२)—कैनिंग अभी निश्चिन्त नहीं हुआ था। भारत में उसके जितने देशवासी थे, वे सब प्रतिहिंसा की नीति के पक्ष में थे, परन्तु यह नीति कैनिंग के विचारों के बिलकुल खिलाफ़ थी। वह तो आपस में फिर मेलजोल कर लेने के पक्ष में था। उसने विद्रोहियो को दण्ड देते समय बुद्धि विवेक को कभी नहीं छोड़ा। अपनी नर्मी के कारण वह तिरस्कार-सूचक उपहास में "दयालु कैनिंग" कहलाने लगा। परन्तु वायसराय इस तरह के ताने सुन कर भी अपनी नीति से तनिक न टला। वह उन लोगों के कोलाहल की बिल्कुल उपेक्षा करता रहा।

शान्त करने की नीति

इस गदर ने आंखें खोल देने का काम किया। कम्पनी के दीवानी और फौजी शासन के दोष प्रकाश में आगए और

शासनप्रबन्ध में परिवर्तन

तत्काल पुनर्व्यवस्था का कार्य आरम्भ कर दिया गया। सन १८६० में भारतीय दण्ड विधान, जिसे लार्ड मैकाले ने बनाया था, पास कर दिया गया। इसके बाद दूसरे वर्ष सिविल और क्रिमिनल प्रोसीजरकोड पास किये गये। पुराने ढङ्ग की सदर दीवानी अदालत और सदर निजामत अदालत की जगह बाकायदा हाईकोर्ट कायम किए गए। पर इन सारे परिवर्त्तनों से अधिक महत्वपूर्ण

इण्डियन कौन्सिलज ऐक्ट

परिवर्तन सन १८६१ में इण्डियन कौन्सिलज एक्ट द्वारा किए गए। इस ऐक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की कौन्सिल में कम से कम आधे सदस्यों का ग़ैरसरकारी होना ज़रूरी होगया। गदर के कारण बहुत आर्थिक क्षति हुई थी, इसलिए जेम्स विल्सन नामी एक

आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन

अंग्रेज़ विशेषज्ञ को आर्थिक स्थिति ठीक करने के लिए भेजा गया, जो इस कौन्सिल का पहला अर्थ-सदस्य बना। उसने चुंगी और सिक्के मे परिवर्तन किए और व्यय में बहुत कुछ काट छाट की। इसके अतिरिक्त जनता को शात करने के लिए कैनिंग ने कुछ और काम भी किए। उसने "मुन्तक्रिल" की नीति को उठा दिया तथा कलकत्ता, बम्बई और मद्रास मे यूनिवर्सिटियां स्थापित कीं।

अपना कार्यभार सन १८६२ की मार्च में अपने उत्तराधि

लार्ड एल्गिन (१८६२-१८६३)—लार्ड एल्गिन अपने पद पर एक वर्ष तक रहने के बाद सन १८६३ में धर्मशाला नामक स्थान में मर गया। उसके शासन काल की मुख्य घटना यह है कि पंजाब के उत्तर-पश्चिम प्रांत की ओर एक फ़ौज कुछ उपद्रवी अफ़ग़ानों को, जो वहाबी नाम से प्रसिद्ध थे, दबाने के लिए भेजी गई।

लार्ड लारेंस (१८६४-१८६९)—लार्ड एल्गिन की मृत्यु के बाद कुछ दिनों तक मद्रास का गवर्नर वायसराय का कार्य सम्हाले रहा। उत्तर-पूर्व प्रदेश में अशान्ति फैल रही थी। बात यह थी कि भूटान के राजा ने हिमालय की तलहटी में दुआर्स नामक ब्रिटिश प्रदेश को रौंद डाला था। आशङ्का थी कि इससे कहीं नाज़ुक स्थिति उपस्थित न होजाय। इसलिए सर जान लारेंस को, जिसने पंजाब के शासन प्रबन्ध और सिपाही-विद्रोह में अपना कार्य इतनी चतुरता और बुद्धिमत्ता के साथ किया था, अब भारत का वायसराय नियुक्त किया गया। भूटान को सेना भेजी गई और थोड़ी-सी अनियमित लड़ाई के बाद वहां शान्ति स्थापित होगई। ब्रिटिश सरकार ने भूटान को कुछ मुआवज़ा देना स्वीकार कर लिया, इस पर भूटान के राजा ने दुआर्स वापिस लौटा दिया।

भूटान के साथ युद्ध

सन १८६६ में उड़ीसा में भयङ्कर अकाल पड़ा। अभी तक इस प्रान्त में रेलें नहीं बनी थीं, अतः अनाज प्रचुर परिमाण में

नहीं भेजा जा सकता था। बाढ़ों के कारण अकाल-

उड़ीसाका
अ का ल

ग्रस्त प्रजा का कष्ट और भी बढ़ गया। अनुमान किया जाता है कि इस अकाल मे कम से कम बीस लाख आदमी मरे होंगे। एक अकाल कमिशन नियुक्त किया गया। इसने भविष्य में ऐसे अकालों का सामना करने के उपायों पर विचार किया और उसकी रिपोर्ट के आधार पर यह निश्चय किया गया कि अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि वे लोगों को भूखों मरने से बचाएँ। भविष्य में ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए पब्लिक वर्क्स डिपार्टमैण्ट के वार्षिक कार्यक्रम मे सड़कों आदि मे वृद्धि करना भी शामिल कर लिया गया।

सर जान लारेंस देश के किसानो के सम्बन्ध मे बड़ी दिलचस्पी लेता था। पंजाब और अवध के लगान कानून पास होने का, जिसके कारण इन प्रान्तो में

कृषि विषयक
का नू न

किसानों को बहुत कुछ सुविधाएं प्राप्त हो गईं, श्रेय भी उसी को है।

सन १८६३ में काबुल का शासक अमीर दोस्त मुहम्मदखां मर गया। अब राज्य के लिये उसके बेटो, अफ़ज़लखां और शेरखां, मे झगड़ा होने लगा। शेरखां को काबुल

अफ़ग़ानिस्तान
के प्रति "साव-
धान तटस्थता"

से खदेड़ दिया गया और उसने ब्रिटिश सरकार से सहायता की प्रार्थना की। सर जान लारैन्स ने कहा कि जो कोई गद्दी पर अधिकार करने में सफल होगा, ब्रिटिश सरकार उसी को काबुल

का शासक मान लेगी। उसने इस झगड़े में किसी तरफ़ का पक्ष ग्रहण करने से इनकार कर दिया; इस नीति को "सावधान-तटस्थता" की नीति कहा गया है, यह अंग्रेज़ों के लिए सुविधाजनक भी थी, क्योंकि वे इसी हस्तक्षेप की बदौलत हाल ही में क़ाफी नुक़सान उठा चुके थे। अन्त में शेरअलीख़ां को सफलता हुई और वायसराय ने उसे काबुल का अमीर स्वीकार कर लिया, परन्तु उसके साथ किसी प्रकार की विशेष मैत्री स्थापित करने से इनकार कर दिया।

लार्ड मेयो (१८६९-१८७२)—सर जान लारेंस के बाद जनवरी सन १८६९ मे भारत का शासन-भार लार्ड मेयो ने ग्रहण किया। अपने आगमन के थोड़े दिनों बाद ही उसने अम्वाला मे एक दरबार किया और उसमे शेरअलीख़ां को भेंट के लिए आमन्त्रित, किया। यहां उसकी बड़ी आवभगत की गई और इससे उसके मन मे सर जान लारेंस के शुष्क व्यवहार से अंग्रेज़ी सरकार के लिए जो विरुद्ध भावनाएँ पैदा होगई थी, वे लगभग शान्त होगई। अमीर स्वयं ब्रिटिश सरकार के साथ घनिष्ट सम्बन्ध करना चाहता था, परन्तु वायसराय ने इस सम्बन्ध में अब भी कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई। हां लार्ड मेयो ने उसके नक़द शुल्क मे वृद्धि कर दी और उसे हथियार प्राप्त करने मे मदद देने का वचन भी दिया।

अम्वाला दरबार म अमीर शेर अली

भारतीय नरेश—गदर के वाद से भारतीय नरेशों के

प्रति भारत सरकार की नीति में भारी परिवर्त्तन आगया था। अब तक देशी रियासतो से उसका जितना सम्बन्ध था, अब सरकार उसे पहले से बहुत अधिक घनिष्ठ कर लेना चाहती थी। यह परिवर्त्तन कैनिंग के शासनकाल मे आरम्भ हुआ था। लार्ड मेयो ने इस परिवर्त्तन की नीति को उसी प्रकार जारी रक्खा। उसका मृदुल स्वभाव और मिलनसार प्रकृति इस उद्देश्य की पूर्त्ति मे और भी अधिक सहायक सिद्ध हुए। उसने राजपूताने मे एक दरबार करके सारे भारतीय नरेशों को आश्वासन दिया कि उनके अधिकारों और सुविधाओ की रक्षा की जाएगी। साथ ही उसने उन्हें भी अंग्रेज़ी सरकार से सहयोग करने की सलाह दी। वायसराय सिर्फ़ इतना ही करके सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने राजाओ के लड़कों की शिक्षा के लिए अजमेर में मेयो कालेज स्थापित किया। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि राजपुत्रों को अनुकूल शिक्षा देकर उन्हें स्वभाव ही से अपने प्रति मित्रतापूर्ण मनोवृत्ति वाला बना लिया जाय।

आश्वासन

अजमेर का मेयो कालेज

आर्थिक व्यवस्था—लार्ड मेयो ने आर्थिक व्यवस्था को सुन्दर रूप देकर भारत की बहुत बड़ी सेवा की। उसके शासन-भार ग्रहण करने के समय धन का बड़ा अभाव था, इसलिए उसे कई नए कर लगाने पड़े और बड़ी किफ़ायतशारी से काम लेना पड़ा। परन्तु उसके सारे सुधारो मे सब से अधिक लाभकारी और उल्लेखनीय सुधार वह था, जिसके अनुसार उसने

किसी निश्चित सीमा तक प्रत्येक प्रांत को अपनी आर्थिक व्यवस्
का स्वयं ज़िम्मेवार बना दिया । अब तक यह कायदा
कि प्रांतीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार से वार्षि
रकमें मिलती थीं और प्रांत अनेक अवसरों पर उ
बडी बेपरवाही के साथ खर्च कर डालते थे, क्योंि
वे जानते थे कि वे जो कुछ बचाएँगे वह स
केन्द्रीय सरकार के कोष मे लौट जायगा । इस नवीन विधान
अनुसार पांच वर्ष तक के लिए प्रांतीय सरकारों को अपने ख
का भार उठाने के लिए कुछ रकमें मंजूर की गई और उनके लि
आय के कुछ विभाग भी नियत कर दिए गए। यदि इस न
आर्थिक प्रबन्ध की बदौलत प्रांतीय सरकारें खर्च के बाद कुछ
बचा सकें तो वह बचत उसी प्रांत के हित के लिए ही खर्च करने
का सिद्धान्त मान लिया गया। इस प्रांतीय उत्तरदायित्व की
नीति से प्रांतीय सरकारों को किफ़ायतशारी से काम लेने के लिए
काफ़ी प्रलोभन मिलने लगा ।

प्रान्तीय शासन व्यवस्था

सन १८७२ की फ़रवरी में लार्ड मेयो अण्डमान में कैदियों
के रहन सहन को देख कर शाम के समय बन्दरगाह की ओर
लौट रहा था कि एक उन्मत्त पठान ने उसके दल का
चुपचाप पीछा किया और यकायक उसकी पीठ में
छुरा भोंक दिया, जिससे वह तत्काल ही मर गया।

हत्या

लार्ड नार्थब्रुक (१८७२–१८७६)—इस नवीन वायस-
राय में यद्यपि व्यवसायात्मिका बुद्धि का अभाव नहीं था, परन्तु

उसमें अपने पूर्ववर्ती शासक जैसी मिलनसारी भी नहीं थी, और इसी लिए काबुल के अमीर शेरअलीखां ने उसके शुष्क व्यवहार से निराश हो कर रूस से सहायता की प्रार्थना की।

बड़ौदा के शासक मल्हारराव गायकवाड़ पर रेज़ीडेण्ट को विष देने की कोशिश करने का अभियोग चला और उसे गद्दी से उतार दिया गया। लार्ड नार्थब्रुक के शासन काल मे दूसरी शोचनीय दुर्घटना सन १८७३-१८७४ का विहार का अकाल था। अकाल-पीड़ितों की सहायता करने के लिए हर तरह का यत्न किया गया, किन्तु उस प्रयत्न मे व्यर्थता बहुत आगई थी, आदमी भूख से तड़प तड़प कर मर गये।

गायकवाड़ को गद्दी से उतारा गया

नार्थब्रुक के समय मे एल्बर्ट एडवर्ड प्रिंस आफ़ वेल्स ने (जो बाद को सप्तम एडवर्ड कहलाए) सन १८७५-१८७६ में इस देश में भ्रमण किया और हर जगह उनका राजभक्तिपूर्ण स्वागत हुआ।

प्रश्न

१. लार्ड कैनिंग ने शासन व्यवस्था में क्या क्या सुधार किए और उसने जनता को शान्त करने के लिए क्या क्या उपाय किए?

२. लार्ड लारेंस ने अफ़गानिस्तान के शासक के प्रति कैसी नीति रक्खी? उस नीति की संक्षिप्त आलोचना करो।

३. लार्ड मेयो ने कौन कौन से आर्थिक सुधार किए ?—प्रांतीय उत्तरदायित्व की व्यवस्था पर प्रकाश डालो।

४. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखो—

इण्डियन कौन्सिल्ज़ एक्ट १८६१, उड़ीसा का अकाल, "सावधान तटस्थता" और शेर अली।

पन्द्रहवां अध्याय

लार्ड लिटन और लार्ड रिपन

लार्ड लिटन (१८७६-१८८०)—जब सन १८७० मे लार्ड नार्थब्रुक भारत से वापिस गया तो उसकी जगह लार्ड लिटन को नियुक्त किया गया। उसने सन १८७७ के जनवरी मास मे दिल्ली मे एक दरबार किया, जिसमें घोषणा की गई कि महारानी विक्टोरिया ने कैसरे-हिन्द की पदवी नियमपूर्वक धारण कर ली है। इस घोषणा को भारत के सारे ज़िलों मे सुनाया गया और इस अवसर पर लोगो ने अपनी राजभक्ति दिखाई। इन दिनों दक्षिण में भयंकर अकाल फैला हुआ था और वहां हज़ारों आदमी भूखों मर रहे थे। अकाल निवारणार्थ लार्ड लिटन मद्रास प्रेज़ीडेन्सो में खुद गया और वहां उसने पीड़ित लोगो की सहायता करने की भरसक कोशिश की। काफ़ी रुपया खर्च किया गया और अकाल पीडित लोगो के भोजन का भी यथाशक्ति प्रवन्ध किया गया। परन्तु

भारत की साम्राज्ञी विक्टोरिया

दक्षिण का अकाल

इतनी कोशिश करने पर भी लोग बड़ी भारी संख्या में काल के ग्रास बने । भारत के इतिहास में ऐसा व्यापक और भयंकर अकाल एक नई घटना थी । अनुमान किया जाता है कि दुर्भिक्ष-पीड़ित प्रदेश २,५०,००० वर्गमील रहा होगा । हर प्रकार की सहायता करने की कोशिश करने पर भी, कहा जाता है कि इस अकाल में पचास लाख से कम आदमी नहीं मरे होंगे ।

उस समय ब्रिटेन का रूस के साथ युद्ध छिड़ा हुआ था और रूस को सफल होता देख कर भारत के देशी भाषाओं के कुछ समाचार पत्रों ने राजद्रोहपूर्ण लेख प्रकाशित करने आरम्भ कर दिए । इस पर लार्ड लिटन ने देशी समाचार पत्र सम्बन्धी विधान(Vernacular Press Act.) जारी किया, जिसके अनुसार देशी भाषाओं के सम्पूर्ण पत्रों के सम्पादकों को राजद्रोह की भावना उत्पन्न करने वाले लेख न लिखने के लिए बाधित कर दिया गया । इस प्रकार देशी और अंग्रेज़ी समाचार पत्रों में एक प्रकार की ईर्ष्या उत्पन्न करने वाला भेद पड़ गया, क्योंकि अंग्रेज़ी समाचार पत्रों के लिए ऐसी कोई बंदिश नहीं थी ।

वर्नाक्युलर प्रेस-एक्ट

८ जनवरी सन १८७७ को लार्ड लिटन ने अलीगढ में ओरियण्टल कालेज की नींव रक्खी । आज कल वही कालेज अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के नाम से प्रसिद्ध है । इस कालेज को सर सय्यद अहमद खां ने कायम किया था । वह उन्नीसवीं सदी में मुसल्मानों के सब से बड़े नेता थे । सर सय्यद

सर सय्यद अहमद और अलीगढ़ कालेज

अहमद एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने अंग्रेज़ी का जानकार न होते हुए भी अपने सहधर्मियों को पाश्चात्य विचारों से अभिज्ञ होने की सलाह दी। वह बहुत बुद्धिमान और बड़े रोबदाब वाले आदमी थे, अपनी योग्यता और प्रभाव के कारण वह कट्टर विचारो के मुसल्मानों के संकुचित दृष्टिकोण मे बहुत कुछ परिवर्तन लाने मे कामयाब होसके। तब तक प्रायः मुसल्मान पाश्चात्य शिक्षा के विरुद्ध थे। सर सैयद की गणना मुसल्मानों को उन्नति के मार्ग पर ले जाने वाले बड़े बड़े नेताओ मे की जाती है।

अफ़ग़ानिस्तान की दूसरी लड़ाई

अफ़गानिस्तान—जिस समय लार्ड लिटन इङ्गलैंड से भारत के लिये रवाना हुआ तो वहा की गवनमेंटने उसे खास तौर से हिदायत करदी थी कि वह अफ़गानिस्तान के अमीर शेरअली के साथ अवश्य सन्धि कर ले। हम देख ही चुके हैं कि वह ब्रिटिश सरकार के व्यवहार से किस प्रकार निराश हो गया था। उसकी और उसकी प्रजा की धारणा थी कि अंग्रेज़ परले सिरे के स्वार्थी हैं। वह ऐसी सन्धि करना चाहता था जिसके द्वारा अफ़गानिस्तान की गद्दी का स्वामी वह और उसके वंशज ही बने रहें। परन्तु उसकी इस अभिलाषा को लार्ड लिटन के पूर्ववर्ती गवर्नर जनरलो ने पूरा न होने दिया। लार्ड लिटन ने उससे एक अंग्रेज़ी मिशन से भेंट करने का अनुरोध किया, परन्तु उसे इस कार्य से भयंकर परिणाम की सम्भावना थी। अतः उसने नम्रता के साथ इस मिशन से भेंट करने से इन्कार कर दिया। लार्ड लिटन ने इस बात को ब्रिटिश

हितों को 'घृणा व्यंजक उपेक्षा समझा और अमीर को सावधान कर दिया कि इस अस्वीकृति की कीमत शायद उसे महंगे दामों में अदा करनी पड़ेगी । पर शेर-अली बराबर इन्कार करता रहा। इन्हीं दिनों ब्रिटिश सरकार ने क्वेटा पर अधिकार कर लिया, जिससे अमीर के छक्के छूट गए। इस स्थान के परे बोलान का दर्रा शुरू होता है, जो अफ़गानिस्तान को जाने का एक मार्ग है। अब अमीर को आशंका हुई कि अंग्रेज़ उसके देश पर धावा करना चाहते हैं। इसके बाद ही एक और बात हुई जिससे अमीर की आशंका और भी बढ़ गई। अंग्रेज़ों ने गिलगित में एक अंग्रेज़ी सेना स्थापित कर दी।

शेरअली ने ब्रिटिश राजदूत भेंट करनेसे इन्कार कर दिया

इधर अमीर को सन् १८७८ में अपनी इच्छा के विरुद्ध रूसी दूत से भेंट करनी पडी। इस बात ने बहुत संगीन रूप धारण कर लिया। उस समय उसकी अवस्था लार्ड लिटन के शब्दों में 'लोहे के दो खम्भों के बीच मे एक मिट्टी के बर्तन जैसी थी।' वह यह जानता था कि अंग्रेज़ों से उसे तब तक सहायता नहीं मिल सकती, जब तक वह उनकी शर्तों को पूरी तरह मान न लेगा; परन्तु इन शर्तों को पूरा करना उसके लिए लगभग असम्भव-सा था। इसलिए बाधित हो कर उसने रूस के साथ भी बिगाड़ करना उचित नहीं समझा, बल्कि शीघ्र ही उसने रूस के साथ मैत्री स्थापित करली। इधर लार्ड लिटन ने एक

रूस के साथ अमीर की संधि और युद्ध घोषणा

मिशन उससे भेंट करने को भेजा, जिसे उसने नम्रता के साथ खैबर के दर्रे से ही वापस लौट जाने को बाधित किया। इस पर वायसराय ने यह कह कर कि मिशन को अफ़गानिस्तान से बलपूर्वक खदेड़ दिया गया है, लड़ाई की घोषणा कर दी।

काबुल की ओर तीन रास्तोंसे तीन सेनाएँ रवाना की गईं। अफ़गान सेना ने कोई रुकावट नहीं की और शेर अली को अपने देश से भागना पड़ा। इसके बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। अंग्रेज़ो ने उसके सबसे बड़े लडके याकूब खां को गद्दी पर बैठाना स्वीकृत कर लिया और मई सन १८७९ मे उससे एक सन्धि कर ली, जिसके अनुसार याकूब खां काबुल मे ब्रिटिश रेज़ीडेण्ट रखने पर राज़ी हो गया और उसने ब्रिटिश सरकार को दर्रों के कुछ ज़िले भी दिए।

याकूबखां, गंडमक की सुलह

पर ब्रिटिश विजय को स्थायी रूप न मिल सका और सन १८७९ मे विदेशियों की अधीनता मे रहने के विरुद्ध अफ़गानो मे तीव्र घृणा उत्पन्न हो गई। उन्होने क्रोध मे आकर रेज़िडेण्ट और उसके संगी साथियो को मार डाला। इस कारण एक नई लड़ाई छिड गई। जनरल रौबर्ट्स ने काबुल पर धावा करके उस पर अधिकार कर लिया। शहर मे मार्शल ला जारी कर दिया गया और बहुत से विद्रोहियो को फांसी पर चढ़ा दिया गया। याकूबखां को गद्दी से उतार दिया गया और उसे पिछले हत्याकांड में भाग लेने के

अफ़गानों का विद्रोह

सन्देह पर शाही कैदी की हैसियत से कलकत्ते भेज दिया गया। इसी समय इंगलैण्ड में मन्त्रि-मण्डल के बदले जाने के कारण लिटन ने इस्तीफ़ा दे दिया और उसकी जगह अफ़गानिस्तान से शान्तिपूर्ण समझौता करने के लिए लार्ड रिपन को भेजा गया।

लार्ड रिपन (१८८० –१८८४)—इस समय तक सारे अफ़गानिस्तान में विद्रोह की आग लग चुकी थी। याकूब खां का भाई अयूबखां हिरात का शासक बन बैठा था और उसने मायवंड में एक ब्रिटिश सेना को भारी शिकस्त दे कर अब कन्धार पर धावा बोल दिया था। जनरल रावर्ट्स काबुल और कंधार की रक्षा के लिए रवाना हुआ और उसने ३०० मील से अधिक का पार्वतीय मार्ग तीन सप्ताह में तय कर लिया। उसने अयूब की सेना को हरा कर बुरी तरह नष्ट कर डाला और इस प्रकार मायवंड की दुर्घटना का बदला ले लिया। इसके बाद ब्रिटिश सेना काबुल और कन्धार से वापिस चली आई और अयूबखां ने हिरात पर एक बार पुनः धावा करके कन्धार पर कब्ज़ा कर लिया। पर उसे शेर अली के भतीजे अब्दुर्रहमान के हाथों हार खानी पड़ी। इस विजयी को ब्रिटिश सरकार ने काबुल का शासक स्वीकार कर लिया और भविष्य में किसी विदेशी हमले से अफ़गानिस्तान की रक्षा करने का उत्तर-दायित्व अपने ऊपर ले लिया।

मायवंड की दुर्घटना

जनरल रावर्ट्स की युद्ध विजय

भारत में जागृति—अफ़गानिस्तान का झगड़ा निपट

जाने के बाद लार्ड रिपन ने भारत की ओर अपना ध्यान दिया। अपने विचारों मे वह—"ग्लैडस्टन के ज़माने का लिबरल था; अतः उसने भारत के शासन मे कुछ उदारता से काम लेना और शासक और शासित के भेद को, जहां तक हो सके, दूर करना अपना लक्ष्य बना लिया। वास्तव मे भारत की जागृति का आरम्भ उसी के शासन-काल से होता है; उसी के शासन-काल मे भारतीयों के हृदयो में वह विकलता और भावनाएँ उत्पन्न होने लगी थीं, जो किसी पराधीन देश में आत्म-विश्वास उत्पन्न करने का आवश्यक पूर्वाभास होती हैं।" पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार और फलतः पाश्चात्य संस्कृति के प्रचार ने लोगों पर काफ़ी प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया था। इन भावनाओं के साथ लार्ड रिपन की हार्दिक सहानुभूति थी और वह उनके लिए यथाशक्ति अधिक से अधिक सुविधाएं भी प्रदान करना चाहता था। वह इन भावनाओ का ऐसे ढङ्ग से उपयोग करना चाहता था, जिससे देश के अत्यन्त प्रभावशाली और सुयोग्य व्यक्ति अपने स्थानीय शासन प्रवन्ध में प्रमुख भाग ले सकें।

भारत के साथ सहानुभूति

स्थानीय स्वराज्य (लोकल सेल्फ गवर्नमेंट)—इस वायसराय का नाम उन अनेक विधानों के सम्वन्ध मे विशेष तौर से याद किया जाता है, जिनके द्वारा भारत में स्थानीय स्वराज्य की नींव पड़ सकी। यह सच है कि प्रेज़ीडेन्सी शहरों (कलकत्ता,

बम्बई और मद्रास) मे म्यूनिसिपल संस्थाओं की स्थापना इससे पहले ही हो चुकी थी, परन्तु उनके अतिरिक्त अन्य शहरों मे इस सम्बन्ध मे कुछ भी नहीं हुआ था । इन विधानों के द्वारा

डिस्ट्रिक्ट और लोकल बोर्ड

डिस्ट्रिक्ट और लोकल बोर्ड कायम किए गए और उन्हे सफ़ाई का प्रबन्ध करना, प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था करना, सड़कों को अच्छी दशा मे रखना और इसी प्रकार के अन्य कार्यों की ज़िम्मेवारी सौंपी गई। गवर्नर जनरल की इच्छा थी कि इन संस्थाओं के सदस्यो में गैरसरकारी सदस्यो की संख्या अधिक हो और जहाँ कहीं सम्भव हो सका, उसने चुनाव की प्रथा को जारी भी किया। इन बोर्डों को अपना सभापति स्वयं चुनने का अधिकार दिया गया। हां, खास खास सूरतो में सरकार किसी नामज़द मेम्बर को

राजनीतिक शिक्षण

भी प्रधान बना सकती थी । गवर्नर जनरल को आशा थी कि इस तरीके से लोगों को राजनीतिक शिक्षा मिलेगी, जिससे वे राजनीतिक कार्यों को अधिक विस्तृत रूप से और अधिक व्यवस्थित ढङ्ग से पूरा कर सकेंगे। पर बोर्डों के कर्मचारी उसकी उच्च आशाओं के अनुरूप सिद्ध न हुए, तथापि ऐसी संस्थाओं की स्थापना करना देश की कोई साधारण सेवा न थी। व्यावहारिक रूप में अधिकारीवर्ग का प्रभुत्व पहले ही जैसा बना रहा और गैरसरकारी सदस्य आगे बढ़नेमें कुछ संकोच से काम लेते रहे। मांटेगू चेम्स-फोर्ड सुधारों तक उक्त स्थिति में विशेष अन्तर नहीं आया था।

लार्ड रिपन ने अपने शासन काल में जितने काम किए, उन इल्वर्ट बिल की बदौलत वह भारतीय जनता का सब से अधिक प्रिय बन सका। यह बिल वायसराय की शासन

वर्ट बिल

परिषद के कानूनी सदस्य मि० इल्वर्ट ने पेश ...या था। इस बिल का उद्देश यह था कि गैरसरकारी अंग्रेज़, ...शेष कर चाय के बागो के मालिक, पहले की तरह अपने नौकरो ...साथ बुरा व्यवहार न कर सकें। इस समय तक ये लोग अपने ...रतीय मज़दूरों के साथ पशुओं का सा व्यवहार करते थे, और ...भी कभी तो उन्हें जान से भी मार डालते थे, इस पर भी उन्हें ...यः कोई दण्ड न मिलता था। यह प्रथा गुलामी की प्रथा से कुछ ...म भयकर न थी। इल्वर्ट बिल के अनुसार भारत के इतिहास ... पहली बार अपराध के मामलो मे अंग्रेज़ो के ऊपर देशी जजो ...ो न्यायनिर्णय का अधिकार दिया गया। इस बिल के पास ...ोने से उन लोगों का, जिन्हें इससे हानि पहुँचने की सम्भावना ...ी, क्रोध भड़क उठा और ऐंग्लो इण्डियन पत्रो मे लार्ड रिपन के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हो गया। अन्त मे इस आन्दोलन से दब कर लार्ड रिपन को एक समझौता करना पड़ा, जिसके अनुसार यूरोपियन अभियुक्त का अपराध निर्णय ऐसी ज्यूरी के हाथ में सौंपा गया, जिसमें कम से कम आधे यूरोपियन अवश्य हों।

लार्ड रिपन ने लार्ड लिटन का देशी पत्र सम्बन्धी विधान रद्द कर दिया और देशी पत्रों को एक बार पुनः अन्य पत्रों की तरह

अन्य हित-
कारी कार्य

सार्वजनिक हितों की चर्चा करने की स्वतन्त्रता होगई। उसने एक शिक्षा समिति भी स्थापित की, जिसके फलस्वरूप प्रारम्भिक और उच्च शिक्षा की व्यवस्था में उन्नति करने का प्रबन्ध किया गया और शिक्षा के लिए किए जारहे गैरसरकारी प्रयत्नों को प्रोत्साहन दिया गया। उसने एक और उल्लेखनीय कार्य यह भी किया कि राज्यच्युत मैसूर के राजा के—जिसे बेन्टिक ने गद्दी से उतार दिया था—धर्मपुत्र को पुनः मैसूर की गद्दी पर बिठा दिया था।

सन १८८४ मे रिपन ने इस्तीफा दे दिया। उसके जाने पर भारतीयों ने बड़ा खेद प्रकट किया। वे उसे अपने हितों का सच्चा समर्थक समझते थे। बहुत से भारतीयों की राय है कि उन्नीसवीं सदी के सम्पूर्ण वायसरायों में लार्ड रिपन सर्वश्रेष्ठ थे।

प्रश्न

१. अफ़गानिस्तान की दूसरी लड़ाई के क्या कारण थे? उसकी खास खास घटनाएं बर्णन करो।

२. लार्ड रिपन भारतीयों को इतना प्रिय कैसे हो गया था? उसके द्वारा किए गए किन्हीं दो प्रसिद्ध कार्यों का वर्णन करो।

३ निम्न लिखित पर संक्षिप्त नोट लिखो—

देशी-पत्र सम्बन्धी विधान (वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट), लोकल सेल्फ गवर्नमेंट, इल्बर्ट बिल।

सोलहवां अध्याय

लार्ड डफ़रिन, लार्ड लैंसडाउन और लार्ड एल्गिन

लार्ड डफ़रिन(१८८४ से १८८८)—लार्ड रिपन के बाद लार्ड डफ़रिन भारत का वायसराय नियुक्त हुआ। उन दिनों अफ़ग़ान सरकार और रूस के साथ रूस-अफ़ग़ान सरहद के विषय में बातचीत चल रही थी। नए वायसराय का ध्यान सब से पहले उसी की ओर आकर्षित हुआ। पंजदेह में रूसी और अफ़ग़ानी सेना में मुठभेड़ होगई, पर इस दुर्घटना को भाग्यवश, लार्ड डफ़रिन के बुद्धि कौशल और अब्दुर्रहमान के विवेक से कोई भयङ्कर रूप न मिल सका। अब्दुर्रहमान अफ़ग़ानिस्तान को दो बड़ी ताकतों की लड़ाई का मैदान नहीं बनाना चाहता था।

पंजदेह

बर्मा के राजा थीबा के राज्य में बहुत अधिक संख्या में संगठित डाके पड़ते थे, उनके कारण बर्मा ट्रेडिङ्ग कम्पनी और

बर्मा की तीसरी लड़ाई

अन्य ब्रिटिश व्यापारियों को भारी नुकसान उठाना पड़ता था । थीबा इस अवस्था को दबाने में असमर्थ साबित हुआ । अंग्रेज़ी सरकार ने उससे इन ब्रिटिश व्यापारियों के नुकसान की पूर्ति करने को कहा, परन्तु उसने इनकार कर दिया। इसके अतिरिक्त उसके

उपरी बर्मा मिला लिया गया

सम्बन्ध में यह भी कहा गया कि वह फरांसीसियों और इटैलियनों के साथ षड्यन्त्र रच रहा है । अन्त मे जब उसने बर्मा ट्रेडिङ्ग कम्पनी पर किसी वजह से भारी जुर्माना कर दिया तो लार्ड डफ़रिन ने भी उसके विरुद्ध लड़ाई की घोषणा करदी और एक अंग्रेज़ी सेना ने इरावदी की ओर कूच कर दिया। मंडाले पर अंग्रेज़ों का अधिकार होगया और बर्मा के राजा को भारत भेज दिया गया । सन १८८६ की जनवरी में ऊपरी बर्मा (Upper Burma) को ब्रिटिश राज्य में मिलाने की घोषणा कर दी गई ।

इसी साल ग्वालियर के महाराजा सिंधिया को उसका क़िला वापिस दे दिया गया । यह क़िला गदर के ज़माने से अंग्रेज़ों के

जुबली

पास था । सन १८८७ में महारानी विक्टोरिया के शांतिपूर्ण शासनकाल का पचासवां वर्ष आरम्भ हुआ। भारत में इस अवसर पर रायल जुबली बड़े हर्ष और आनन्द से मनाई गई।

लार्ड डफ़रिन के शासन काल में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना

हुई। सन् १८८५ में बम्बई मे इण्डियन नेशनल कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ। इस संस्था की स्थापना का श्रेय मि० ह्यूम को है, जो स्वयं भी किसी ज़माने मे भारत-सरकार का एक अफ़सर (सिविल सर्वेंट) रह चुका था। इस संस्था के अन्य उद्देशों में से, बाद के एक प्रेज़ीडेण्ट के शब्दो मे, "राष्ट्रीय एकता की उन भावनाओं को विकसित और प्रकृत रूप देना था, जिसका जन्म लार्ड रिपन के स्मरणीय शासन काल में हुआ था।" कांग्रेस के इस प्रेज़ीडेण्ट ने कहा था कि हम ब्रिटेन के पूर्ण भक्त है, ब्रिटेनने भारतमें शांति स्थापित की है, रेलें बनाई हैं और पाश्चात्य शिक्षा के द्वारा देश को असीम लाभ पहुँचाया है। परन्तु हम यह चाहते हैं कि भारतीय शासन प्रबन्ध मे हम अपने उचित और स्वाभाविक अधिकार प्राप्त करें। लार्ड डफ़रिन इस नवीन संस्था का विरोधी नहीं था, अपितु उसने इसे भारतीय दृष्टिकोण से परिचित होने का उत्तम साधन समझा। उस समय से अब तक कांग्रेस ने अनेक बार अपने उद्देशों में परिवर्तन किया है और तदनुसार उसके प्रति सरकार की नीति भी बदलती रही है। धीरे-धीरे यह संस्था देश की राजनीति में बहुत शक्तिशाली बन गई।

इण्डियन नेशनल कांग्रेस

सन् १८८४ मे आर्य समाज के, जिसे सन् १६११ की जनगणना की रिपोर्ट मे गत अर्धशताब्दी का सब से बड़ा धार्मिक आंदोलन कहा गया है, प्रवर्त्तक और हिन्दू धर्म के महान् सुधारक स्वामी दयानन्द सरस्वती का देहान्त हुआ। केवल संख्या की दृष्टि से

स्वामी दयानन्द और आर्य समाज

आर्य समाज का स्थान बहुत ऊंचा नहीं है, परन्तु सर चार्ल्स इलियट के शब्दों मे "आर्य समाज अपने संगठन की पूर्णता और उत्कृष्टता के लिये विख्यात है।" इसने अब तक देश मे सामाजिक सुधार और शिक्षा सम्बन्धी बहुत से कार्य किए हैं,—विशेष कर पंजाब और संयुक्त प्रांत में।

लार्ड लैंसडाउन (१८८८–१८९४)—नए वायसराय, लैन्सडाउन ने अपना अधिक ध्यान सीमान्त प्रदेशों की रक्षा की ओर लगाया। उसने अमीर अब्दुर्रहमान के साथ कुछ बातों के सम्बन्धमें सफ़ाई करने के लिए सर मार्टिमर डूथूरैण्ड की अधीनता मे काबुल को एक मिशन भेजा। मार्टिमर अपने उद्देश में पूर्ण सफल हुआ और उसने अफ़ग़ानिस्तान की दक्षिणी और पूर्वीय सीमाओं को निश्चित करने का प्रबन्ध किया। अमीर के शुल्क में काफ़ी वृद्धि कर दी गई, जिससे दोनों राज्यों की मित्रता और भी अधिक घनिष्ट होगई।

सीमा प्रात की रक्षा

इस वायसराय के शासन काल में, आसाम की सरहद पर, कछार के पूर्व में अवस्थित मनीपुर नाम की रियासत में कुछ अशान्ति पैदा हुई।

सन् १८९२ में आसाम के चीफ़ कमिश्नर और उसके दल को कत्ल कर दिया गया। इस पर अंग्रेज़ी सेना ने रियासत पर अधिकार कर लिया और वहां के राजा को गद्दी से उतार कर अण्डेमान भेज दिया गया। इस विद्रोह में जिन्होंने मुख्य भाग लिया था, उन्हें फांसी दे दी गई। उसके बाद

मनीपुर की लड़ाई

राजवंश की दूर की रिश्तेदारी का एक लड़का गद्दी पर बैठाया गया और उसके बालिग होने तक रेजिडेण्ट को उसका रक्षक बनाया गया।

इण्डियन कौन्सिल्ज़ ऐक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार प्रांतीय कौन्सिलों और इम्पीरियल कोन्सिल मे गैर सरकारी सदस्यों की सख्या बढ़ा दी गई और यूनिवर्सिटी और अन्य लोकल संस्थाओं को, जिनमें म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड भी थे, अपने सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया। ये सदस्य लोकहित के सम्बन्ध में प्रश्न कर सकते थे। उन्हे बजट पर बहस करने का भी अधिकार दिया गया—परन्तु कुछ प्रतिबन्धो के साथ।

इण्डियन कौन्सिल ऐक्ट सन १८९२

लार्ड एल्गिन (१८९४ से १८९९)—सन १८९४ में लार्ड लैंसडाउन की जगह पर द्वितीय वायसराय के पुत्र लार्ड एल्गिन को नियुक्त किया गया। उसने भी अपने पूर्ववर्ती शासक की भाति सीमान्त सम्बन्धी समस्याओ की ओर अधिक ध्यान दिया। एक ओर बर्मा और दूसरी ओर चीन तथा स्याम के बीच की सीमान्त रेखा निश्चित कर दी गई। एक सन्धि के अनुसार ब्रिटिश और रूसी राज्यों की सरहदों को कायम कर दिया गया। एक कमीशन द्वारा अफ़ग़ानिस्तान की सीमा भी निश्चित कर दी गई। उत्तर पश्चिम सीमा के उस पार चित्राल में एक सेना भेजी गई। वहां अशान्ति फैल रही थी और उससे उत्तर भारत में भी अशांति उत्पन्न होजाने का भय था।

चित्राल

इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया गया। दो वर्ष बाद अफ़रीदियों को दमन करने के लिए सेना भेजी गई। इन्होंने ब्रिटिश सेना पर हमला कर दिया था और खैबर के दर्रे को रोक रक्खा था। इन लोगों को भगा दिया गया, तथापि वे पूरी तरह कावू में नहीं आए। यह लड़ाई टीरा की लड़ाई कहलाती है।

टीरा की लड़ाई

सन १८९५ में वर्षा कम हुई और सन १८९६ में और भी कम। परिणाम यह हुआ कि पुनः एक भयङ्कर अकाल पड़ा, जिसका प्रभाव मध्य प्रान्त और संयुक्त प्रान्त पर सबसे अधिक था, परन्तु अन्य प्रान्त भी उससे बचे नहीं रहे थे। इस अकाल का सामना करने की बहुत कुछ कोशिश करने पर भी साढ़े सात लाख भारतीय भूख से तड़प तड़प कर मर गए। अभाग्य से यह विपत्ति अकेली नहीं आई। उसी साल बम्बई में गिल्टी का प्लेग फैल गया। भारत में यह बिल्कुल नई बीमारी यूरोप से ही आई थी। सरकार ने लोगों की दृढ धारणाओं का विचार न करके प्लेग को दबाने की कुछ ऐसी कोशिशें कीं, जिन्हें लोगों ने शक और अविश्वास की निगाह से देखा और इसके बदले में अनेक अराजकतापूर्ण अपराध—विशेषकर बम्बई प्रेज़ीडेन्सी में—किए गए। सरकारी कर्मचारी बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी, इस संक्रामक रोग को बढ़ने से रोक न सके और उधर जनता इसका दोष अधिकारियो के मत्थे मढ़ती रही। इस प्रकार लार्ड एल्गिन के शासनकाल के अन्तिम भाग में राजनीतिक अशान्ति बहुत रही।

अकाल और महामारी

प्रश्न

१ बर्मा के तीसरे युद्ध का संक्षिप्त विवरण लिखो।

२ इण्डियन नेशनल कांग्रेस का जन्म कैसे हुआ ? उसके उद्देश क्या थे ?

३. निम्नलिखित विषयों पर नोट लिखो—

(अ) पंजदेह का मामला।

(ब) टीरा की लड़ाई।

(द) १८९२ का इण्डियन कौन्सिल ऐक्ट।

सत्रहवां अध्याय

लार्ड कर्ज़न, लार्ड मिन्टो और लार्ड हार्डिंग

लार्ड कर्ज़न (१८९९-१९०५)—लार्ड वैन्टिक के समय से लेकर, लार्ड लारेंस को छोड़ कर जितने गवर्नर जनरल या वायसराय आए, उनमे से एक को भी कार्य भार लेने से पूर्व भारत की अवस्था या एशिया की जातियों और समस्याओं से जानकारी नहीं थी। इस बात मे लार्ड एल्गिन के बाद का गवर्नर जनरल अपवाद स्वरूप था। शासन भार ग्रहण करने से पहले दस वर्षों तक वह एशिया के विभिन्न प्रदेशों में घूम फिर कर भारत के निवासियों के रहन सहन, आचार व्यवहार और रीति-रिवाजो का अध्ययन करता रहा था। इसके अतिरिक्त बचपन ही से वायसराय बनने की उसकी बड़ी आकांक्षा थी और उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा अपने को पहले ही से इस कार्य के लिए तैयार कर लिया था। जब उसकी नियुक्ति की घोषणा निकली तो यह कहने वाले लोगों की कमी नहीं थी कि 'इस

वायसराय पद पर कर्ज़न की नियुक्ति

उपाधि दी गई और उन्हें उसकी भारी पेन्शन नियत रूप से वराबर ही मिलती रही।

तिब्बतियों ने भारत के साथ किसी तरह का सम्बन्ध न रखने का दृढ़ निश्चय कर लिया था और इन दिनों उन्होंने एक रूसी दूत का लासा में स्वागत किया था। इन कारण तिब्बत पर आक्रमण करने के लिए ब्रिटिश सेना भेजी गई, पर इस धावे का परिणाम केवल भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करने और लासा—जो इतने दिनों से अगम्य था—तक पहुँच पाने के सन्तोष के अतिरिक्त और कुछ न हुआ। ब्रिटिश सरकार ने तिब्बत के ऊपर चीन का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। चीन में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित होने के समय से तिब्बत फिर स्वाधीन हो गया है। लार्ड कर्ज़न ने फ़ारस की खाड़ी में ब्रिटिश हितों की रक्षा की आयोजना की। इस खाड़ी के किनारों और उसके द्वीपों पर अधिकार करने के लिए अनेक विदेशी शक्तियां प्रयत्न कर रही थीं।

तिब्बत की लड़ाई

फ़ारिस की खाड़ी

२२ जनवरी सन १९०१ को रानी विक्टोरिया अपने दीर्घ और यशस्वी शासन के बाद वृद्धावस्था में परलोक सिधारी। इस पर सब ओर बड़ा शोक मनाया गया। उनके बाद प्रिंस आफ़ वेल्स एडवर्ड सप्तम के नाम से गद्दी पर बैठे। एडवर्ड का राज्याभिषेक उत्सव दिल्ली के एक विशाल दरबार में सन १९०३ के जनवरी मास में मनाया गया।

विक्टोरिया की मृत्यु और एडवर्ड सप्तम का राज्याभिषेक

दरबार मे सम्पूर्ण भारतीय नरेश और अन्य सम्मान्य व्यक्ति स्थित हुए थे।

आन्तरिक शासन प्रबन्ध—आन्तरिक शासन मे भी र्ड कर्ज़न ने अनेक योजनाओं को काम मे लाना आरम्भ किया। पुलिस महकमे के कर्मचारियो का वेतन बढाया गया और रगरूटो की शिक्षा का प्रबन्ध या गया। उसने जितने आर्थिक सुधार किए, उनमे तीन सब से धिक महत्वपूर्ण सुधार पौंड की कीमत पन्द्रह रुपया निश्चित कर देना, माननीय गोखले के कहने पर नमक-कर घटाना और छोटी छोटी आमदनियों को इनकम टैक्स से मुक्त कर देना था। भारत के सानो की दशा मे सुधार करने के लिए उसने कर लगाने र कर सग्रह में सुविधा करने वाले अनेक नियम बनाए। उसने व्यापारिक संघों को प्रोत्साहन दिया, जो आजकल इतने विस्तृत और शक्तिशाली बन गए हैं। साथ ही उसने सिंचाई का विस्तार करने की क्रमबद्ध योजना की। उसने एक काम यह किया कि सन १९०० में पंजाब स्वामित्व विधान (Panjab Land Alienation Act) ारी कर दिया, जिसके द्वारा अनेक काश्तकार जातियों से गैर काश्तकारों की ज़मीन खरीद सकना गैर-कानूनी कर दिया गया। इस विधान का उद्देश कर्ज़ के लिए ज़मीन को ज़मानत रखने में बाधा

पुलिस

आर्थिक व्यवस्था

लगान

पंजाब ऐलीए-शन एक्ट

Act) जारी किया और पुरातत्त्वान्वेषण विभाग (Archaeological Department) भी कायम किया। इस विभाग ने अब तक प्राचीन इतिहास के चिन्हों की रक्षा करने और खुदाई आदि द्वारा अनुसंधान करने में बहुत कुछ काम किया है।

शासन की अवधि बढ़ा दी गई

कर्ज़न की अवधि सन १९०४ के अप्रैल में समाप्त होती थी, परन्तु उसने अभी कुछ अन्य भी विशेष कार्य करने थे। अतः उसकी अवधि दो वर्ष के लिए और बढ़ा दी गई।

वंगभंग

इस अवधि में उसने जो सब से अधिक उल्लेखनीय काम किया वह वंगभंग था। लार्ड कर्ज़न का विश्वास था कि इतने बड़े प्रांत का शासन-प्रबन्ध एक प्रान्तीय सरकार के लिए बहुत भारी सिद्ध होता है, इसलिए उसने सन १९०५ के अक्तूबर मास में 'आसाम और बङ्गाल' नामक नया प्रांत बना दिया। इस प्रांत में सारा आसाम और बङ्गाल के पन्द्रह ज़िले शामिल किए गए और इनका केन्द्र ढाका को रक्खा गया था। इस पर बङ्गालियों में विरोध भावना ने ज़ोर पकड़ा।

व्यापक आन्दोलन

उन्हें विश्वास था कि यह कार्य बङ्गाल के राष्ट्रीय संगठन को तोड़ने के लिए किया गया है। नेताओं ने स्वदेशी आंदोलन जारी किया, जिसका उद्देश स्वदेशी वस्तुओं द्वारा विदेशी वस्तुओं का प्रचार रोकना था। इस आन्दोलन से देश भर में बेचैनी फैल गई और कहीं कहीं अराजकतापूर्ण अपराध भी किए गए।

इङ्गलेण्ड की लिबरल पार्टी के मन्त्रित्व का भारत पर प्रभाव

इससे भारत मे ब्रिटिश शासन नीति के ऊपर भी कोई प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। नवीन भारतमन्त्री जॉन मारले ने भारतीय शासन व्यवस्था के सुधारों में अपनी पार्टी की उन्नतिशील नीति बरतने का निश्चय कर लिया था। भाग्यवश नवीन वायसराय लार्ड मिण्टो (भारत के सन् १८०७ से १८१३ तक के गवर्नर जनरल मिण्टो के परपोते) को भी, बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से यह विश्वास हो चला था कि अब वह समय आ गया है जब कि भारत की शासन व्यवस्था मे भारतीयों को भी उत्तरदायित्व के पद प्राप्त करने और राज्य संचालन में सहयोग देने का अवसर दिया जाय।

जिस समय शासन की बागडोर मिंटो-मारले के हाथों में पहुँची, उस समय भारत में राजनीतिक आंदोलन ज़ोर पकड़ रहा था। बंगभंग के विरुद्ध बायकाट का प्रचार खूब

राजनीतिक अशाति

ज़ोरों पर था। रूस के ऊपर जापान की विजय को पूर्व के उत्थानका लक्षण समझा गया और भारतीय लोकमत के नेताओं ने जापान की इस विजय द्वारा लोगों में यह भाव भरने का प्रयत्न किया कि एशिया के लोग यूरोपियन्स के मुकाबले में बिल्कुल गए बीते नहीं हैं। उधर इङ्गलैंड में लिबरल पार्टी के अधिकार प्राप्त करने से भारतीयों के हृदयों मे बडी बड़ी आशाएं जागृत हो उठी थीं। अतः इण्डियन नेशनल कांग्रेस का प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता जाता था। भारत की राष्ट्रीयता एक

नया ही रूप धारण करती जा रही थी। अब वह सरकार के लिये क्रमशः अधिकाधिक असहनशील होती जा रही थी। पहले राष्ट्रीय नेता केवल शासन प्रबन्ध में अधिक भारतीय सहयोग ही मांगते थे, परन्तु अब कुछ ऐसे गर्म विचारों वाले लोग (Extremists) भी पैदा हो गए थे, जो केवल इन छोटी मोटी रियासतों से ही सन्तुष्ट नहीं थे और जो भारत के लिये पूरा स्वराज्य चाहते थे।

नर्मदल और गर्मदल

उसमें से कुछ तो लक्ष्य प्राप्ति के लिये भौतिक बल का व्यवहार करने के भी पक्ष में थे। यह भौतिक बल प्रयोग करने वाला दल एक ऐसा उत्तेजनात्मक आन्दोलन फैला रहा था, जिसके फलस्वरूप यूरोपियनो पर अनेक घातक आक्रमण किए जाने लगे थे। उस समय के अधिक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ, जो माडरेट कहलाते थे और जो उचित तथा वैध उपायों से ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्वराज्य चाहते थे, इस भौतिक शक्ति के व्यवहार से किसी तरह की सहानुभूति नहीं रखते थे। सन् १९०७ में सूरत की कांग्रेस में गर्म दल ने कांग्रेस में अपना बहुमत बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु इसमें उन्हें सफलता न मिली, तब कांग्रेसी लोगों में बाद के कई वर्षों तक भी दो दल बने रहे। इनमें से एक दल गरम और दूसरा 'नरम' कहलाया जाने लगा। परन्तु भारत जन सेवक संघ के संस्थापक गोपालकृष्ण गोखले जैसे त्यागी विद्वान् के प्रभावशाली नेतृत्व मे कांग्रेस माडरेट ही बनी रही। परन्तु गर्म दल ने अपना प्रयत्न बन्द नहीं किया और दूसरी ओर क्रांतिकारी लोग अपने हत्या के प्रयत्न भी उसी तरह करते रहे।

इस प्रकार मिण्टो को दो कर्त्तव्य पूरे करने थे । एक ओर उसे बढ़ती हुई विद्रोह शक्ति को कुचलना था, दूसरी ओर वह भारत सचिव से इस बात में भी सहमत था कि इस अराजकता और विद्रोह की मौजूदगी में भी हमे शासन-सुधार की नीति व्यवहार मे लानी ही चाहिए । मिण्टो और मारले दोनों को माडरेटों के सहयोग पर भरोसा था, जो उनके कथन के अनुसार भारत के बुद्धिविवेक के प्रतिनिधि थे । जहां क्रान्तिकारी प्रयत्नों को दबाने के लिए मिण्टो ने कई कानून बनाए, वहां १७ दिसम्बर सन १६०८ को मिण्टो-मार्ले सुधारों की घोषणा की गई और सन १६०८ मे उन्हे इण्डियन कौन्सिलज़ ऐक्ट के नाम से पास कर दिया गया । इस ऐक्ट के अनुसार इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल और प्रांतीय लेजिस्लेटिव कौन्सिलों का निर्माण किया गया और प्रांतीय कौंसिलो मे गैर सरकारी दल का बहुमत कर दिया गया । जातिगत पृथक् निर्वाचन-प्रथा (Separate Communal Electorate) अमल मे लाई गई । कौंसिलो के अधिकारों मे वृद्धि की गई । वायसराय की कार्यकारिणी समिति (Executive Council), प्रांतीय कार्यकारिणी परिषदों (Provincial Executive Councils) और इण्डिया आफ़िस वाली भारतमंत्री कौन्सिल मे भारतीय सदस्य भी भरती किए गए । इन सुधारों ने यद्यपि माडरेटों को सन्तुष्ट कर दिया, परन्तु गर्म दल वालों पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उनके प्रयत्न

दमन और रियायतें

मिण्टो-मार्ले सुधार

उसी तरह जारी रहे।

लार्ड हार्डिंग (१९१०–१९१६)—लार्ड मिन्टो के बाद लार्ड हार्डिंग आया, जो भारत मे सिक्खों के साथ पहला युद्ध करने वाले गवर्नर जनरल हार्डिंग का पोता था। यह अपने देश का बड़ा प्रसिद्ध व्यक्ति था और उसने भारतीय भावनाओं के प्रति बड़ी सहानुभूति दिखाई।

सन १९११ का राज्याभिषेक दरबार

अब तक किसी ब्रिटिश सम्राट् ने अपने शासनकाल मे भारत में पदार्पण नहीं किया था। सन १९११ मे सम्राट् जार्ज दिल्ली के एक विशाल राज्याभिषेक दरबार में सम्राज्ञी सहित पधारे, वहां उन्होंने राजाओं और भारतीय जनता से भेंटे स्वीकार की। इस देश में सम्राट् और सम्राज्ञी का बड़े उत्साह से स्वागत किया गया। यह विशाल दरबार दिल्ली में १२ दिसम्बर सन १९११ को हुआ था, जिसमे ८०,००० आदमी एकत्रित हुए थे। सजावट और तडक-भड़क उस अपूर्व अवसर के अनुरूप ही थी।

सम्राट महोदय ने इस अवसर पर दो महत्वपूर्ण घोषणाएं कीं। भारत की राजधानी कलकत्ते से हटाकर दिल्ली लाई गई। बङ्गाल के दोनो भागों को पुनः सम्मिलित कर दिया गया तथा बिहार और उड़ीसा नाम का एक नया सूबा बनाया गया। आसाम का भी एक नया सूबा बना। इस प्रकार बगभंग के घावो की पूरी तरह चिकित्सा कर दी गई और वह असन्तोष शान्त हो गया।

इम्पीरियल सरकार के लिए एक नया शहर बसना

आवश्यक था। आरम्भ मे इसके लिए ४०,००,००० पौंड व्यय का अन्दाजा किया गया था, परन्तु वास्तविक व्यय इससे कहीं अधिक हुआ है। नवीन दिल्ली (या रायसीना) का प्रमुख भाग कुछ वर्ष पूर्व ही बन कर समाप्त हुआ है। वायसराय ने नई राजधानी मे सन् १९१२ के दिसम्बर में धूम-धाम के साथ प्रवेश किया। जिस समय यह शानदार जलूस चांदनी चौक में से धीरे धीरे गुज़र रहा था, उस समय वायसराय के हाथी पर एक बम फेंका गया। भाग्य से लार्ड हार्डिंग के प्राण लेने का प्रयत्न सफल न हुआ। हां, वे घायल बहुत बुरी तरह हुए, परन्तु इस घटना से लार्ड हार्डिंग के हृदय की विशालता और लेडी हार्डिंग की धीरता का सबूत मिल गया। वायसराय ने दमननीति ग्रहण करने के बजाय इस आक्रमण के घावों से अच्छा होते ही कौन्सिल मे मर्मस्पर्शनी अपील की—"मैं अपने को और लेडी हार्डिंग को पुलिस की अपेक्षा लोगों के हाथों मे सौंपना अधिक पसन्द करता हूं।" अपने इस भाषण की बदौलत वह भारत मे और भी अधिक प्रसिद्ध हो गए।

नवीन दिल्ली

दक्षिण अफ्रीका मे भारतवासी—सन १९१३ में दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने एक कानून पास किया जिसके अनुसार एशियावासियों से आरेंज फ्री स्टेट मे व्यापार, खेती करने या कोई निजी सम्पत्ति बनाने की अनेक सुविधाएँ छीन ली गई थीं। इससे स्वभावतः ही भारत मे घोर उत्तेजना फैली। दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों ने महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी के नेतृत्व में तीव्र

परन्तु अहिंसात्मक आन्दोलन शुरू किया। लार्ड हार्डिङ्ग ने भारत के इस आन्दोलन का अपनी प्रसिद्ध वक्तृता द्वारा ज़ोर से समर्थन किया—"भारत की गहरी और प्रज्ज्वलित सहानुभूति, और न सिर्फ भारतीयों की ही बल्कि मेरे जैसे भारत के हितैषियों की सहानुभूति, दक्षिण अफ्रीका के इस अन्यायपूर्ण और ईर्ष्यामूलक क़ानून के विरुद्ध प्रयत्न करने वाले देशभक्तों के आन्दोलन के साथ है।" भारत सरकार के प्रधान व्यक्ति के द्वारा अफ्रीका-सरकार की कार्रवाई के खिलाफ़ ऐसे सनसनी फैलानेवाले विरोध के प्रकट करने का फल अच्छा सिद्ध हुआ। एक जांच कमेटी के फलस्वरूप वहां इण्डियन रिलीफ़ ऐक्ट पास किया गया और मित्रता प्रदर्शित करने वाले अन्य आश्वासन भी दिए गए।

हार्डिंग की सहायता

महायुद्ध—सन १९१४ में यूरोपियन महायुद्ध छिड़ गया, जिसमे शीघ्र ही इङ्गलैंड भी बुरी तरह फँस गया। यद्यपि इस युद्ध के कारण बहुत गहरे थे और यूरोप भर में इस युद्ध की बरसों से तैयारी हो रही थी, तथापि यह आग पहिले पहल सर्विया मे लगी और थोड़े ही दिनो मे सारे यूरोप मे फैल गई। ११ नवम्बर सन १९१८ को जर्मनी की हार के साथ इस युद्ध की समाप्ति हुई। इङ्गलैंड ने भी युद्ध मे भाग लिया था। इस महान युद्ध में मित्र-राष्ट्रो की युद्ध की विजय का श्रेय सब से पहले दो आदमियो को मिलना चाहिए। एक तो लायड जार्ज, जिसने अपनी स्फूर्ति और आशावादिता से ब्रिटिश जनता मे जीवन बनाए रक्खा और

जो उन खतरे के दिनों इङ्गलैण्ड के सम्मिलित मन्त्रिमण्डल का मुखिया था। दूसरा व्यक्ति मित्र शक्तियों का कमाण्डर मार्शल फोश है, जिसका प्रत्याक्रमण एक अप्रतिम आघात था। इस विश्वव्यापी युद्ध की घटनाओं का उल्लेख न करके हम यहां पर इस महायुद्ध में भारत ने जो सहयोग दिया, केवल उसी का बहुत संक्षेप मे वर्णन करेंगे। संसार के इतिहास मे इससे बड़ा और कोई युद्ध नहीं हुआ।

जर्मनो का विश्वास था कि युद्ध छिड़ते ही भारत मे विद्रोह और उत्तेजना की आग लग जायगी। परन्तु उनका यह विश्वास शीघ्र ही भ्रम सिद्ध हुआ। इसके विपरीत सम्पूर्ण भारत ने संगठित होकर अंग्रेज़ी साम्राज्य की रक्षा के लिए बड़े से बड़े वलिदान किए। लाखों वीर भारतीय फ्रान्स के युद्धक्षेत्रो म वीरता पूर्वक लड़ते हुए मारे गए।

युद्ध में भारत का भाग

वास्तव में इस महायुद्ध के छिड़ने से भारतवासियों और देशी राजाओं की राजभक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। इस महायुद्ध मे २०,००,००० भारतवासियों ने भाग लिया। वे फ्रान्स, फ्लैण्डर्स मैसीडोनिया, मिश्र, पैलेस्टाइन और मेसोपोटामिया के मैदानो में अपने ब्रिटिश सहयोगियों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर शत्रु से लड़े। भारत के विरोधी से विरोधी दल ने भी इस युद्ध मे सरकार का पूरा साथ दिया। रुपये पैसे के मामले में देशी राजाओं और जनसाधारण ने वड़ी वड़ी राशियां देने मे एक दूसरे से आगे वढ़ने की कोशिश की। इसके अतिरिक्त भारत ने दो अन्य देशो में

भी अपनी सेनाएँ धावे के लिए भेजीं, एक जर्मन ईस्ट अफ्रीका के विरुद्ध और दूसरी मैसोपोटामिया में तुर्कों पर आक्रमण करने के लिए। भारत की व्यवस्थापिका सभा ने सर्वसम्मति से इस अवसर पर इङ्गलैण्ड को एक अरब रुपया दान में दिया।

प्रश्न

१. लार्ड कर्ज़न के व्यक्तित्व पर एक नोट लिखो।

२. वग भंग के आन्दोलन का संक्षेप में वर्णन करो।

३. लार्ड कर्ज़न के नए कार्य क्या क्या थे?

४. मिण्टो मारले रिफार्म स्कीम के सम्वन्ध में तुम क्या जानते हो?

५. लार्ड हार्डिंग भारत में सर्वप्रिय कैसे बने?

६. निम्नलिखित पर नोट लिखो—

सन १९११ का दरबार, नई दिल्ली, दक्षिण अफ्रीका के भारतीय और यूरोपियन महायुद्ध।

अठारहवां अध्याय

लार्ड चैम्सफोर्ड, लार्ड रीडिंग और लार्ड इरविन

(सन १९१६ से मई १९३२ तक)

लार्ड चैम्सफोर्ड (१९१६ से १९२१)—यूरोपियन महायुद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ था कि लार्ड हार्डिंग को अपने शासनकाल की अवधि समाप्त हो जाने के कारण इङ्गलैण्ड लौट जाना पड़ा। नया वायसराय चैम्सफोर्ड भारत में प्रत्यक्षतया यही उद्देश्य लेकर आया था कि वह इस देश से महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रों को अधिकतम सहायता दिलाने का प्रयत्न करेगा। अतः उसके आते ही खूब ज़ोरशोर से फौजों की नई भरती की जाने लगी और युद्ध-ऋण के लिए धन एकत्र किया जाने लगा। हम पहले ही कह चुके हैं कि भारतवर्ष ने युद्ध-ऋण का दस करोड़ पौंड चुकाने का जिम्मा अपने ऊपर लिया। सन १९१७ की इम्पीरियल युद्ध-परिषद् और युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद सन

१९१९ की शान्ति परिषद् में भारतीय प्रतिनिधियों को भी आमन्त्रित किया गया।

स्वराज्य आदोलन

इसी वीच भारत के राजनीतिज्ञों में वेचैनी वढ़ती जा रही थी। राजनीतिक अशांति ने पहले के समान ज़ोर पकड़ लिया था। इन दिनों सुप्रसिद्ध विद्वान और देश-भक्त लोकमान्य तिलक और मिसेज़ वेसेण्ट के नेतृत्व मे होमरूल आन्दोलन शुरू किया गया। इण्डियन नैशनल कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने सुधारों की एक संयुक्त योजना तैयार की। क्रमशः आन्दोलन ने वड़ा तीव्र रूप धारण कर लिया।

१९१७ अगस्त की घोषणा

इसी अशान्त वायुमण्डल मे सन १९१७ में भारत सचिव मि० ई० एस० माण्टेग्यू ने एक महत्वपूर्ण घोषणा की, जो एक नीतिज्ञ क शब्दों में "पार्लियामेंट मे वर्क और पिट के ज़माने के वाद से तव तक की सारी घोषणाओ से सव से अधिक महत्वपूर्ण थी।" इस घोषणा का अभिप्राय था कि भारत मे व्रिटिश सरकार की नी ति का उद्देश्य भारतीयों को शासनप्रवन्ध के प्रत्येक विभाग में केवल अधिकाधिक अवसर देना ही नहीं है, वरंच इस देश में उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन की क्रमशः स्थापना के लिए जनता के मत द्वारा व्यवस्था करने वाली संस्थाओ की स्थापना करना भी है, जिससे भारत व्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत उसका एक आवश्यक अंग वन जाए।

मि० माण्टेग्यू नवीन नीति को व्यवहारिक रूप देने के लिये वायसराय के परामर्श से एक रिपोर्ट तैयार करने भारत मे आए। देश की सभी राजनीतिक संस्थाओं ने उनको सहयोग दिया और उन्होने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रिपोर्ट तैयार की, जो सन् १९१८ मे ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने रक्खी गई।

माण्टेगू चैम्स-फोर्ड रिपोर्ट

उधर युद्ध के बाद भारत के शासन मे कोई वडा परिवर्तन न आते देख कर स्वतन्त्रता प्रेमी भारतीय वडे उद्विग्न हो रहे थे और अनेक नवयुवक मार्गभ्रष्ट होकर हत्या के तरीकों पर भी उतर आए थे। परिणाम यह हुआ कि इन हिंसात्मक आक्रमणों के सम्बन्ध मे विचार करने के लिये भारत सरकार ने मि० रौलट की अधीनता मे एक विशेष कमेटी वैठाई। इसकी सिफ़ारिशों के आधार पर सरकार ने दो ऐक्ट ऐसे पास किए जिनके द्वारा सरकार को इन षड्यन्त्रो के विरुद्ध लगभग असीमित शक्ति प्राप्त हो गई। इन मसविदो को भारतीय लोकमत के विरोध करते रहने पर भी पास कर दिया गया। इसलिए भारतीय नेताओ ने उनकी वड़ी कटु आलोचना की। पर रौलट ऐक्ट इस पर भी वापिस नहीं लिया गया।

रौलट एक्ट

अब मोहनदास करमचन्द गांधी, जो अपने साधु जीवन के कारण लोगो मे महात्मा के नाम से सिद्ध हो चुके थे, भारत की राजनीति मे महत्वपूर्ण और निश्चयात्मक पार्ट खेलने के लिए आगे वढ़े। उन्होने रौलट ऐक्ट का विरोध करने के लिये शान्तिमय और

सत्याग्रह में म० गांधी का नेतृत्व

अहिंसात्मक सत्याग्रह का आन्दोलन आरम्भ किया। इसके लिए उन्होंने सन् १९१९ की ६ अप्रैल को देश भर में सत्याग्रह दिवस मनाने की घोषणा कर दी। उस दिन देश भर में पूर्ण हड़ताल होनी थी। महात्मा गांधी के स्पष्ट आदेश के विरुद्ध भी दिल्ली, अहमदाबाद और बम्बई में दंगे हो गए। पंजाब और विशेष कर अमृतसर मे भी उत्तेजना की लहर फैल गई। अमृतसर में क्रुद्ध जनता ने पब्लिक भवनों को जला डाला, पांच अंग्रेज़ों को मार दिया और एक अंग्रेज़ महिला का अपमान किया। पंजाब के अन्य भी अनेक स्थानों पर रेलवे लाइन और तार नष्ट कर दिए गए।

मार्शल ला

पंजाब के कुछ ज़िलों मे मार्शल ला की घोषणा कर दी गई। इसके बाद ही जलियानवाला बाग की दुर्घटना हुई। सर वैलन्टाइन शिरोल कहता है—"एक अशुभ दिन उसने (जनरल डायर ने) एक ऐसे जन-समुदाय पर बिना किसी भी चेतावनी के गोली की बौछार करना उचित समझा, जो उसके आदेश की अवज्ञा करके जलियानवाला बाग में एकत्र हुआ था। यह शासको और शासितों के बीच में ऐसी घृणित खाई खोदता था कि ब्रिटिश भारत के इतिहास मे उस कलङ्कपूर्ण दिन की कहानी की उपेक्षा नहीं की जा सकती।" अभाग्यवश इस भयंकर गोली काड के बाद ही अमृतसर की गलियों में लोगों को पेट के बल रेंगने को बाधित किया गया। इन अदूरदर्शिता पूर्ण कार्यों की स्मृति भारतीय लोगों के दिमाग से कभी नहीं दूर

हो सकी। इन सब बातों से इस देश में जातिगत विरोध प्रज्ज्वलित हो गया। जब ड्यूक आफ़ कनाट सन १६२१ मे भारत मे पधारे तो उन्होंने भी कहा था—"अमृतसर की छाया सारे भारत पर फैल गई है।"

सन १६१६ के अन्त मे ब्रिटिश पार्लियामेट ने, माण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के आधार पर "गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट' पास किया। इस ऐक्ट के द्वारा भारतवासियों को स्वराज्य की ओर एक और कदम बढ़ाने का अवसर दिया गया और प्रांतीय शासन में उन्हे कुछ उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपे गए। इन सुधारों का अधिक विस्तृत विवरण अगले परिच्छेद मे किया जायगा।

गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट

विश्वव्यापी युद्ध के बाद शांति कायम करना सदैव बडा कठिन होता है। टर्की के साथ अंग्रेज़ों ने जिन शर्तों पर सन्धि की थी, उससे भारत के मुसल्मानो के अग्रसर दल मे घोर विरोध की भावना का जन्म हो गया था। महात्मा गाधी ने पंजाब के अत्याचारो के साथ ख़िलाफ़त के सवाल को भी शामिल कर लिया और बहिष्कार की नीति अपनाकर ब्रिटिश शक्ति को अशक्त करने के लिए असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस बहिष्कार की चार मुख्य धाराएं थीं—नई कौन्सिलों मे भाग लेने के लिए कोई उम्मेदवार या निर्वाचक तैयार न हो। सब भारतीय हाथ के कते और बुने कपड़े ही पहनें

असहयोग

कुछ लोगों ने अमीर के पास भारतीय जनता की अशांति और बेचैनी का अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण लिख कर सलाह दी कि यदि वह एक बार सीमा पर हमला कर दे, तो चारों ओर विद्रोह की आग लग जायगी। सन १६१६ की मई मे अमीर की सेना ने भारतीय सीमा पार करके ब्रिटिश राज्य पर धावा बोल दिया। उनका सामना करने के लिए ब्रिटिश सेना ने खैबर पर धावा कर दिया और डक्का पर अधिकार कर लिया। जलालाबाद और काबुल पर बम गिराए गए। उत्तर की ओर अफ़गानों को बात की बात मे हरा दिया गया। दक्षिण की ओर लडाई कुछ देर तक जारी रही, परन्तु यहा भी अफ़गानो को मुंह की खानी पड़ी और उन्होने स्वयं ही शांति के लिए प्रार्थना की।

८ अगस्त सन १६१६ को, रावलपिण्डी मे दोनों ओर से एक सन्धिपत्र लिखा गया। इस सन्धि के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने अमीर से वे सुविधाएं वापिस ले लीं, जिनके द्वारा वह ब्रिटिश भारत के रास्ते अस्त्र शस्त्र मंगाता था। पैन्शन की पिछली रकमे भी रद कर दी गई और भविष्य के लिए पैन्शन बन्द कर दी गई। इन सब के बदले में अफ़गानिस्तान को सब से बडी चीज़ यह मिली कि उसका अन्य देशों के साथ स्वतन्त्र सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार मान लिया गया।

लार्ड रीडिंग (१९२१–१९२६)—सन १६२१ में लार्ड रीडिंग भारत का वायसराय नियुक्त हुआ। भारत मे आने से पहले ही वह अपनी कार्यकुशलता के लिए प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका

-था। इन अशांति के दिनों उसका अनुभव बड़ा काम आया। उसने अत्यन्त नाजुक और खतरनाक स्थिति को बड़ी योग्यता और सफलता के साथ वश में कर लिया। उसका शासनकाल दृढ़ और प्रबल शासन का समय था।

असहयोग वापिस ले लिया गया।

इधर असहयोग ने बड़ा विकराल रूप धारण कर लिया था। अब तक महात्मा गांधी का जन साधारण पर बड़ा गहरा प्रभाव स्थापित हो चुका था। प्रिंस आफ़ वेल्ज़ के आगमन पर उन्होंने हड़ताल की घोषणा की। वह गुजरात के एक ज़िले बारदोली में सभी तरह के कर देना अस्वीकार करके सत्याग्रह आरम्भ करने के विषय मे अपनी योजनाएं बना रहे थे। परन्तु कांग्रेस के कुछ अनुयायी उचित रूप से अहिंसा व्रत का पालन न कर सके। चौरा-चौरी नामक एक पुलिस के थाने पर क्रोध में आई हुई एक भीड़ ने धावा बोल दिया और पुलिस वालों को बुरी तरह मार डाला। इसके बाद और कई स्थानों पर भी कुछ दुर्घटनाएं हुई। तब उस महान् नेता ने शोक और पश्चात्ताप से अभिभूत होकर सत्याग्रह के लिए देश की असमर्थता स्वीकार कर ली और कहा कि लोग पूर्णतः अहिंसा-व्रत का पालन नहीं कर सके, अतः सत्याग्रह अनिश्चित समय के लिए स्थगित किया जाता है।

इस मौके पर सरकार ने भी दमन से काम लेना शुरू किया। अधिकांश राष्ट्रीय नेता, जिनमे महात्मा गांधी भी थे, गिरफ्तार कर लिए। बहुत से स्वयंसेवकों को भी जेल में भेज दिया

गया। उधर टर्की के साथ संतोषजनक सन्धि हो जाने से मुसल्मानों की उत्तेजना भी शात हो गई।

इन्हीं दिनो देश मे हिन्दू और मुसल्मानो के झगड़े शुरू हो गए। कई स्थानों पर भयकर मारकाट हुई। कुछ समय के बाद कांग्रेस के अनेक नेता जेल से छूट कर बाहर आए। तब पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे एक कमीशन नियुक्त किया गया, जिस की रिपोर्ट के आधार पर कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन का विचार काफ़ी समय तक के लिए स्थगित करके कौन्सिलो मे जाकर स्वराज्य के लिए लड़ाई लड़ने का निश्चय किया। सन १९२५ के फ़रवरी मास मे महात्मा गाधी को भी सरकार ने छोड़ दिया।

लार्ड इरविन (१९२६–१९३१)—सन १९२६ के अप्रैल मास मे लार्ड इरविन भारत के वायसराय बन कर आए। जिन दिनो वह बम्बई मे उतरे, उन्ही दिनो मे कलकत्ता शहर के हिन्दू मुसल्मानो मे बड़ा भयकर दंगा हो गया। इसके बाद दगो ने और भी भीषण रूप पकड़ा।

हिन्दू और मुस्लिम दंगा

सन १९२७ के दिसम्बर मे किसी धर्मान्ध मुसल्मान ने दिल्ली मे स्वामी श्रद्धानन्द को कत्ल कर दिया। इससे हिन्दू-मुस्लिम दंगो की ज्वाला और भी भभक उठी। लार्ड इरविन ने दोनो जातियो मे सद्भाव बनाने के लिए बड़ा गम्भीर प्रयत्न किया।

इरविन अपने देश का एक कृषि-विशारद समझा जाता रहा है। भारत मे आकर उसने यहा भी कृषि की उन्नति के लिए

एक शाही कमिशन नियुक्त करवाया।

साइमन कमीशन

सन १९२८ में इङ्गलैण्ड की सरकार ने भारत के शासन-विधान की जाच पड़ताल करने के लिए सर जान साइमन की अध्यक्षता मे एक शाही कमिशन नियुक्त किया। इस कमीशन मे एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। इस कारण इस देश के सम्पूर्ण राजनीतिक दलों ने इसका बहिष्कार किया। सन १९२९ के अन्त मे इङ्गलैण्ड मे पुनः मज़दूर सरकार

वैजवुडवैन

कायम हो गई और श्री रैम्ज़े मैकडानल्ड के प्रधान-मन्त्रित्व मे सर वैजवुड बैन भारत-सचिव नियुक्त हुए। इस भारत मन्त्री को भारतीय लोकमत के साथ गहरी सहानुभूति थी। उधर लार्ड इरविन के हृदय मे भी भारत और इङ्गलैण्ड में परस्पर मैत्री के भाव वनाए रखने की प्रवल आकांक्षा थी।

सर्वदल सम्मेलन और कलकत्ता कांग्रेस

उधर भारतीय नेताओं की ओर से भारत में शान्ति स्थापन करने और राजनीतिक आन्दोलन के लिए परस्पर समझौता करने का प्रयत्न जारी था। इसके लिए, कांग्रेस के प्रयत्न पर अनेक राजनीतिक दलो की तरफ़ से एक नेहरू कमेटी नियुक्त की गई। इस कमेटी की रिपोर्ट में देश ने बड़ी दिलचस्पी ली। इस रिपोर्ट मे औपनिवेशिक स्वराज्य को भारत का ध्येय मान कर सब जातियो का एक पैक्ट वनाने का प्रयत्न किया गया था। सन १९२९ के दिसम्बर मास मे कलकत्ता कांग्रेस ने नेहरू रिपोर्ट के आधार पर अपना ध्येय, एक वर्ष के लिए, औपनिवेशिक

स्वराज्य कर लिया। परन्तु इस नेहरू रिपोर्ट से भी हिन्दू मुस्लिम सवाल हल न हो सका, तथापि इसके द्वारा इस सवाल को हल करने मे मदद अवश्य मिली।

सन १६३० के सितम्बर मास मे लार्ड इरविन इङ्गलैण्ड गए और लौट कर १७ नवम्बर १६३० के दिन उन्होंने एक घोषणा की, जिसका अंग्रेज़ी भारत के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इस घोषणा मे यह स्वीकार कर लिया गया कि भारत मे अंग्रेज़ी शासन का उद्देश्य इस देश मे पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) कायम करना है। इस कार्य के लिए शीघ्र ही इङ्गलैण्ड मे एक राउण्डटेबल कान्फरैन्स होने की घोषणा भी वायसराय ने की। इस कान्फरैन्स में भारत के सम्पूर्ण दलों और हितो के प्रतिनिधि तथा इङ्गलैंड की सरकार तथा अन्य दलों के प्रतिनिधि भी शामिल होने थे। २४ दिसम्बर के दिन वायसराय ने भारत के चार महान नेताओं—महात्मा गांधी, पं० मोतीलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू और मुहम्मद अली जिन्हा—को इसी प्रश्न पर विचार करने के लिये दिल्ली मे आमन्त्रित किया। इस बातचीत का परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस ने राउण्ड टेबल कान्फरैस में भाग लेने से इन्कार कर दिया, परन्तु देश के अन्य सम्पूर्ण दलों तथा संगठनों ने वायसराय की घोषणा का खूब स्वागत किया। वायसराय के साथ नेताओ की इस कान्फरैन्स मे सिर्फ एक दिन पहले

राउण्ट टेबल कान्फरैन्स

से विदेशी माल की दूकानों, विशेषकर अंग्रेज़ी कपड़े की दूकानों पर कांग्रेस के स्वयसेवक पिकेटिंग करने लगे। वायसराय ने अपने विशेपाधिकारो का प्रयोग करके पिकेटिंग आदि के खिलाफ़ क्रमशः १२ आर्डीनान्स जारी किए। परन्तु यह आन्दोलन मरने पर न आया। इससे देश के व्यापार तथा आयात निर्यात पर वडा भारी प्रभाव पड़ा। सरकार ने कांग्रेस की वर्किंग कमेटी को ग़ैर क़ानूनी करार दे दिया और बहुत से स्थानों की कांग्रेस कमेटियां तथा अन्य अनेक संघ ग़ैर क़ानूनी बना दिए गए। सन १६३० के सम्पूर्ण वर्ष में यह आन्दोलन बहुत ज़ोरों पर रहा। कोई ६० हज़ार कांग्रेसी जेलो मे भेजे गए। अनेक स्थानों पर पोलीस से जनता की मुठभेड़ भी हुई और पेशावर, शोलापुर आदि स्थानो पर तो हत्याकाण्ड भी होगए। साथ ही क्रान्तिकारी लोगो ने अपनी कार्रवाइयां जारी रक्खीं।

राउण्डटेवल कान्फरेन्स

उधर इङ्गलैण्ड मे राउण्ड टेवल कान्फरैन्स की पहली बैठक जारी थी, इसमे भारतवर्ष से कांग्रेस और व्यापार-मण्डल को छोड़ कर वाकी सभी दलों के सरकार द्वारा नामज़द प्रतिनिधि शामिल हुए थे। इस कान्फरैन्स के द्वारा दोनो देशो को एक दूसरे के मनोभावों को समझने का वड़ा अच्छा अवसर मिला। भारतीय राजाओ ने भी इस कार्य मे वड़ा प्रशसनीय सहयोग दिया और यह निश्चय किया गया कि निकट भविष्य मे ही एक भारत-संघ (Federation of Indian Empire) की शानदार स्थापना की जाय। परन्तु

भारत की अशान्ति के कारण कान्फरैन्स का वायुमण्डल कुछ उदास-सा ही बना रहा।

लार्ड इरविन और भारतसचिव वैजवुड वैन की यह हार्दिक इच्छा थी कि कांग्रेस भी देश के शासन-निर्माण में सहयोग दे। कर्नल वैजवुड वैन के अपने शब्दों मे कांग्रेस 'हिन्दोस्तान की सब से बड़ी और सुसङ्गठित संस्था थी और भारतीय जनता पर तो कांग्रेस का ही सब से अधिक प्रभाव था।" अतः सन १९३१ के फरवरी मास मे सरकार ने सम्पूर्ण नेताओं को जेलों से छोड़ दिया और कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी पर से बन्दिश उठा ली। इधर ६

पं० मोतीलाल नेहरू का देहान्त

फरवरी के दिन पं० मोतीलाल नेहरू का देहान्त होजाने से देश भर में शोक के बादल छा गए। थोड़े दिनों बाद महात्मा गांधी दिल्ली में गए और वायसराय से अनेक बार मिलजुल कर उन्होंने सरकार से

गांधी इरविन समझौता।

समझौता कर लिया जो गांधी इरविन समझौता (Pact) के नाम से मशहूर है। इसके अनुसार कांग्रेस ने सत्याग्रह संग्राम वापिस ले लिया और राउण्ड टेबल कान्फरैन्स में सहयोग देने का वचन दिया। अपने इस्तेमाल के लिए नमक बनाने की इजाज़त दे दी तथा सब आर्डीनान्स वापिस ले लिए। स्वदेशी प्रचार के उद्देश्य से शान्तिमय पिकेटिङ्ग करने की भी अनुमति मिल गई।

प्रश्न

ज्ञायुद्ध में भारत के सहयोग पर नोट लिखो ?

न १९२१ का असहयोग आदोलन किसने और क्यों

ग्रकी उन्नति का संक्षेप में वर्णन करो और लिखो कि किस प्रकार हुआ ?

ोसरे अफगान युद्ध का वृत्तान्त लिखो।

न १९३० का असहयोग आन्दोलन क्यों शुरू हुआ ? घटनाएं लिखो।

ाधी इरविन पेक्ट के बारे में तुम क्या जानते हो ?

ाउण्डटेबल कान्फरेंस की पहली बैठक के सम्बन्ध मे तुम जो ो उसे संक्षेप में लिखो।

ाम्नलिखित पर नोट लिखो—

ड कर, जंगलात कानून, लाहौर कांग्रेस और सर्वदल सम्मेलन।

उन्नीसवां अध्याय

लार्ड विलिंगडन और लार्ड लिन्लिथगो

(१९३१ से वर्तमान) लार्ड विलिंगडन १९३१–३६

सन १९३१ के एप्रिल मास में लार्ड इरविन का शासनकाल समाप्त हो गया। लार्ड इरविन अपने भारत प्रेम तथा उदारता के कारण इस देश मे बहुत सर्वप्रिय हो गए थे। अतः वह जब इस देश से गए तो भारत मे इस बात से बड़ा दुःख अनुभव किया गया। उन के बाद लार्ड विलिङ्गडन भारत के वायसराय बन कर आए। यह दो बार बम्बई और मद्रास प्रांत के गवर्नर रह चुके थे।

मार्च १९३१ के अन्त मे करांची कांग्रेस ने भी इस समझौते को स्वीकार कर लिया और राउण्ड टेबल कान्फरेन्स के लिए महात्मा गांधी को अपना एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त किया। सन १९३१ के सितम्बर मास में महात्मा गांधी इङ्गलैण्ड के लिए रवाना होगए।

महात्मा गांधी इङ्गलैण्ड गए

वहां उनका बड़ा आतिथ्य किया गया। परन्तु राउण्ड टेबल कान्फरैन्स मे महात्मा गांधी हिन्दू-मुस्लिम समझौता न करवा सके। शासन-विधान के सम्बन्ध में भी कांग्रेस और सरकार एकमत न हो सके।

इधर भारतवर्ष में भी अशान्ति के बादल पुनः दिखाई दे रहे थे। कांग्रेस और सरकार दोनों को एक दूसरे के व्यवहार से सन्तोष न था। दोनों का कथन था कि दूसरा पक्ष समझौते का पालन नहीं कर रहा। इन्हीं दिनो पं० जवाहरलाल नेहरू ने यू० पी० में लगान न देने का आन्दोलन जारी किया, उधर सीमा प्रांत में अब्दुल गफ़ार खा का लालकुर्ती आन्दोलन जारी था। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने कांग्रेस के इन नेताओ को गिरफ्तार कर लिया। उधर महात्मा गांधी लण्डन से छुट्टी मिलते ही हिन्दोस्तान मे पहुँचे, परन्तु तब तक यहा की स्थिति काबू से बाहर हो चुकी थी। भारत मे आते ही महात्मा गांधी ने, कांग्रेस वर्किंग कमेटी की सलाह से पुनः असहयोग आन्दोलन जारी कर देने की घोषणा कर दी और अगले ही दिन, ५ जनवरी सन १९३२ की रात को वह गिरफ्तार कर लिए गए। सरकार ने असहयोग आन्दोलन को दबाने की सब स्कीमे पहले ही बना रक्खी थीं। उसके अनुसार एक ही साथ चार आर्डीनान्स जारी किए गए और भारतवर्ष भर की कांग्रेस कमेटियां गैर कानूनी करार दे दी गई। कांग्रेस के अनुयाइयों ने इन आर्डीनान्सों को तोड़ना

महात्मा गांधी पुनः गिरफ्तार

आर्डीनान्सों का शासन

शुरू किया। विदेशी माल के बहिष्कार के लिए पुनः पिकेटिंग आदि की जाने लगी। इस तरफ सत्याग्रह आन्दोलन फिर से जारी हो गया। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार करीब ६० हज़ार कांग्रेसी इस आन्दोलन में जेलों मे गए और १००० से ऊपर संस्थाएं गैरकानूनी करार दी गई। कांग्रेस के सैकड़ों मकान और लाखो रुपया ज़ब्त किया गया।

क्रांतिकारी प्रयत्न

इन्ही दिनों हिंसावादी क्रान्तिकारी प्रयत्नों ने भी ज़ोर पकड़ लिया। विशेषतः बङ्गाल मे ऐसे प्रयत्न बहुत होते रहे। वहां इन प्रयत्नों को रोकने के लिए सरकार ने एक आर्डीनान्स भी जारी किया और उसके नीचे हज़ारों गिरफ्तारियां हुईं।

असहयोग की समाप्ति—महात्मा गांधी कट्टर अहिंसावादी हैं। उनका विश्वास है। कि हिंसा से भारतवर्ष आज़ाद नहीं हो सकता और जब तक भारतवासियों मे हिंसा के भाव रहेंगे, असहयोग आन्दोलन सफल न होगा। अतः देश में हिंसात्मक अनुयाइयो की बढ़ती को देख कर उन्हों ने असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया।

बिहार का भूकम्प—जनवरी १९३४ ईसवी में बिहार में एक भयंकर भूकम्प आया, जिसमें हज़ारों आदमी मारे गए; लाखों मकान टूट गए और करोड़ों रुपयों का नुक्सान

हुआ। इस अवसर पर कांग्रेस और सरकार ने एक दूसरे के सहयोग से पीड़ित लोगों को बड़ी सहायता पहुँचाई।

क्वेटा का भूकम्प—विहार भूकम्प की याद अभी ताज़ी ही थी कि सन् १९३५ के मई महीने के आखिर में भारतवर्ष पर एक और महाभयंकर विपत्ति आई। आधी रात के समय एक बहुत ही ज़बरदस्त भूकम्प ने सम्पूर्ण केटा नगर को तबाह कर दिया। यह भूकम्प क्या था, खंड प्रलय था। दो मिनटों मे सम्पूर्ण क्वेटा खंडरातों का ढेर बन गया और करीब ५० हज़ार आदमी जान से मारे गए। इस अवसर पर सरकार तथा कोयटा की सेना ने भूकम्प पीड़ितो की बड़ी सहायता की। हिन्दोस्तान के सभी सूबों के लोगों ने कोयटा फण्ड में काफ़ी धन दान दिया।

सम्राट् पंचम जार्ज की सिल्वर जुबली और मृत्यु—सन् १९३५ मे सम्राट् पंचम जार्ज की सिल्वर जुबली सम्पूर्ण अंग्रेज़ी साम्राज्य मे बड़ी धूमधाम से मनाई गई। परन्तु उसके कुछ ही महीनों के बाद, २९ जनवरी १९३६ के दिन सम्राट् पचम जार्ज का देहान्त हो गया। इस मौत से सारे साम्राज्य में शोक छा गया। सम्राट् पंचम जार्ज अपनी सम्पूर्ण प्रजा मे बहुत लोकप्रिय थे।

सम्राट् अष्टम एडवर्ड—पंचम जार्ज के बाद उनके बड़े

सिन्ध, उड़ीसा और ब्रह्मा—नए शासन सुधारों के अनुसार सिन्ध को वम्बई से और उडीसा को विहार से जुदा कर दिया गया है। ये दोनो प्रान्त अब गवर्नरों के प्रान्त बन गए हैं। सन् १६३७ से वर्मा को भारतवर्ष से पृथक कर दिया गया है और अब वर्मा मे भारतवासियो को विदेशी समझा जाने लगा है। सन् १६३८ मे वहां वर्मियों और भारतवासियो मे अनेक दंगे भी हुए।

नए सुधार—प्रथम एप्रिल १६३७ से भारतवर्ष मे नए सुधारो का प्रारम्भ किया गया। इन सुधारों के अनुसार अव इस देश के ११ प्रान्तों में एक तरह का प्रान्तीय-स्वराज्य कायम होगया है और प्रत्येक प्रान्त की लैजिस्लेटिव असेम्वली के वहु-मत का नेता 'प्रधान मन्त्री' के नाम से अपने प्रान्त का शासन कर रहा है। गवर्नर उसके कामों मे प्रायः हस्तक्षेप नही करता। कांग्रेस भी, इस नए शाशन मे पूरा सहयोग देरही है और देश मे पूर्ण शान्ति तथा व्यवस्था कायम है। सम्भवतः १६४० तक केन्द्रीय सरकार मे भी सुधार जारी हो जायगे। यहां सघ-प्रणाली (फिडरैशन) जारी होगी।

पुत्र अष्टम एडवर्ड के नाम से बादशाह बने। अष्टम एडवर्ड को उनकी प्रजा शुरू ही से बहुत चाहने लगी थी, परन्तु श्रीमती सिम्पसन नाम की एक महिला से विवाह करने की इच्छा से उन्होंने १० दिसम्बर १९३६ को राजसिंहासन छोड़ दिया। अब उन्हे 'ड्यूक आफ विण्डसर' कहा जाता है।

लार्ड लिनलिथगो—एप्रिल सन् १९३६ में लार्ड विलिंगडन का शासन-काल समाप्त हुआ और उनके बाद लार्ड लिन्लिथगो भारतवर्ष के वायसराय बन कर आए। भारतवर्ष का नया शासन-विधान बनाने के लिए जो पार्लियामैण्टरी कमेटी बनी थी, उसके प्रधान लार्ड लिन्लिथगो थे। वह भारतीय कृषि पर नियुक्त किए गए रायल कमीशन के भी प्रधान थे और इसी सिलसिले में वह भारतवर्ष में आए भी थे। इससे उन्हे भारतीय परिस्थिति से अच्छा परिचय है। लार्ड लिन्लिथगो भारत की गाँवों की दशा सुधारने तथा इस देश की खेती-बाड़ी उन्नत करने में बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। उन्होंने अपनी तरफ से कई अच्छे बैल गाँवों को दान में दिये हैं। लार्ड लिन्लिथगो इस मुल्क मे हरदिल अज़ीज़ बन गए हैं।

सम्राट् जार्ज छठे—अष्टम एडवर्ड के राजत्याग के बाद उनके छोटे भाई जार्ज षष्ठ के नाम से सम्राट् बने और १८ मई १९३७ को बड़ी धूमधाम से उनका राज्याभिषेक हुआ। सम्राट् जार्ज छठे भी अपनी प्रजा मे बहुत लोकप्रिय बनते जा रहे हैं।

सिन्ध, उड़ीसा और ब्रह्मा—नए शासन सुधारों के
ुसार सिन्ध को बम्बई से और उड़ीसा को बिहार से जुदा
दिया गया है। ये दोनो प्रान्त अब गवर्नरो के प्रान्त बन
हैं। सन् १९३७ से बर्मा को भारतवर्ष से पृथक कर दिया
ा है और अब वर्मा मे भारतवासियो को विदेशी समझा जाने
ा है। सन् १९३८ मे वहां वर्मियो और भारतवासियों मे अनेक
भी हुए।

नए सुधार—प्रथम एप्रिल १९३७ से भारतवर्ष में नए
ारो का प्रारम्भ किया गया। इन सुधारों के अनुसार अब
देश के ११ प्रान्तों में एक तरह का प्रान्तीय-स्वराज्य कायम
ाया है और प्रत्येक प्रान्त को लैजिस्लेटिव असेम्बली के बहु-
का नेता 'प्रधान मन्त्री' के नाम से अपने प्रान्त का शासन
रहा है। गवर्नर उसके कामो मे प्रायः हस्तक्षेप नहीं करता।
ग्रेस भी, इस नए शाशन मे पुरा सहयोग देरही है और देश में
ीं शान्ति तथा व्यवस्था कायम है। सम्भवतः १९४० तक
्द्रीय सरकार में भी सुधार जारी हो जायगे। यहां संघ-प्रणाली
फेडरैशन) जारी होगी।

बीसवां अध्याय

भारत की शासन-व्यवस्था

भारतवर्ष के अर्वाचीन इतिहास के अन्त में ब्रिटिश शासन-व्यवस्था का खाका खींचना भी आवश्यक प्रतीत होता है। विशेषकर आजकल के दिनों मे जब कि शासन-विधान में परिवर्तन करने का प्रयत्न हो रहा है, शासन-व्यवस्था का महत्व और भी बढ़ गया है।

भारत से ब्रिटिश सम्पर्क सन १६०० से आरम्भ हुआ। जब एलिज़ाबेथ ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को व्यापारिक सुविधाओं का अनुमतिपत्र प्रदान किया था। इन अधिकार-पत्रों में समय समय पर परिवर्तन परिवर्द्धन होते रहे हैं। सन १७६५ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापार-प्रधान संस्था रही है।

अधिकारपत्रों का समय

सन १७६६ में दीवानी का अधिकार मिल जाने पर कम्पनी बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की शासिका बन बैठी। उस समय

. १८५८ तक कम्पनी अनेक प्रदेशो की शासक रही और

अपना व्यवसाय और सुविधाएं छोड़ती चली गई।

नी का
त्व

भारत सरकार के कार्य मे पालियामेट ने सबसे पहले सन् १७३ मे हस्तक्षेप किया और सन् १७८४ मे सन-परिषद् कायम की गई। सन् १७६३ के बाद प्रति ३ वर्षो के अन्तर से भारत के सम्बन्ध मे पार्लियामेट के ट पास होते रहे। सन् १७१३ मे भारत मे व्यापार करने का पनी का एकाधिकार रद् कर दिया गया और इस देश मे व्या-र करने की सब को अनुमति हो गई। सन् १८५३ से सिविल र्विस के लिये उम्मेदवार भरती किये जाने आरम्भ हुए और १८५७ के गदर के बाद से भारत का शासन कम्पनी के थो से ब्रिटिश पार्लियामेट के हाथ मे चला गया।

सन् १८५८ मे सम्राज्ञी के घोषणापत्र के अनुसार इस देश शासन के लिए सम्राज्ञी के नाम पर एक भारत मन्त्री और

रत सम्राट
शासन में

१५ सदस्यो की एक कौंसिल नियत की गई। सन् १८६१ के दो कानूनो द्वारा गवर्नर जनरल की प्रबन्ध कारिणी समिति मे हेरफेर किया गया, ान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिलों को पुनः सङ्गठित किया गया और ाईकोर्ट स्थापित करने की व्यवस्था की गई। उस समय से बीसवीं ाताब्दी तक भारत का पार्लियामेंट्री व्यवस्थापन केवल छोटी ोटी बातो तक ही परिमित था। सन् १८६२ में लेजिस्लेटिव कौंसिलो का कार्यक्षेत्र बढ़ाया गया और उनके कुछ सदस्यो का

चुनाव भी होने लगा।

इन सुधारों का मुख्य उद्देश भारत की व्यवस्थापिका सभाओं (Indian Legislative Councils) को अधिक प्रतिनिधि-सत्तात्मक रूप देना था—जो अन्य उपायों के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाने, नामज़दगी के स्थान पर निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ाने और वाद विवाद में सदस्यों को काफ़ी स्वतन्त्रता देने के रूप में व्यवहार मे लाया गया। परन्तु कौंसिलें इस समय तक भी केवल परामर्श ही दे सकती थीं। इस विषय में कोई उन्नति नहीं हुई थी।

मिण्टोमारले सुधार

उत्तरदायित्वपूर्ण शासन—भारत की शासन व्यवस्था के विकास का दूसरा भाग उत्तरदायित्वपूर्ण अथवा पार्लियामेंट्री सरकार के साथ सम्बन्ध रखता है। उत्तरदायित्वपूर्ण शासन से हमारा अभिप्राय ऐसी शासन व्यवस्था से है जिसकी प्रबन्ध-कारिणी समिति जनसाधारण द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों की इच्छा का पालन करे। मिण्टोमारले सुधार स्कीम ने ब्रिटिश सरकार के शासन प्रबन्ध के ढाचे को हाथ नहीं लगाया था। लार्ड मारले और लार्ड मिण्टो दोनो ने उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की ओर किसी तरह का क़दम उठाने मे साफ़ तौर से अपनी अस्वीकृति जाहिर करदी थी। उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के विचारमात्र का भारतमन्त्री ने क्रोध के साथ खण्डन किया और इसके विषय में घोषणा की थी—"यदि मेरे अस्तित्व की अवधि सरकारी या शारीरिक रूप से बीस गुणा करदी जाय तो भी यह मेरा लक्ष्य

एक क्षण के लिए भी न होगा।"

पर सुधारकों की अपेक्षा घटनाएं अधिक प्रबल थीं। महा-युद्ध ने भारत के विषय में अंग्रेज़ों के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर दिया था। जिस लक्ष्य का सन १९०८ में ज़ोरों के साथ खण्डन किया गया था उसी कीसन की १९१७ मे सरकारी तौर से घोषणा की गई।

मौण्ट-फोर्ड सुधार

प्रांतीय शासन-प्रबन्ध मे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की आवश्यकता मान ली गई। सरकार के अधिकारों और उत्तरदा-यित्वो को प्रातीय और केन्द्रित सरकारों मे विभा-जित किया गया और उनका नाम "केन्द्रित-विषय" और "प्रातीय विषय" रक्खा गया। "प्रातीय विषयों" के भी दो भाग किए गए हस्तान्तरित (ट्रासफर्ड) और सुरक्षित (रिज़र्व्ड) विषय। रिज़र्ड विषयों मे सिंचाई, जङ्गलात, पुलिस आदि शामिल हैं और उनका सम्बन्ध सीधे गवर्नर की प्रबन्धकारिणी समिति से होता है। शिक्षा, लोकल सेल्फ़ गवर्नमेण्ट, कृषि, स्वास्थ्य आदि "ट्रासफर्ड विषयो" मे उत्तरदायित्व पूर्ण शासन अमल में लाया गया। ये विषय गवर्नर के शासन मे रहेंगे और गवर्नर प्रातीय कौंसिलों द्वारा चुने हुए उत्तरदायी मन्त्रियों के परामर्श से उन पर शासन करेगा। यही प्रसिद्ध द्वैधशासन है जो सन १९१९ के ऐक्ट द्वारा स्थापित किया गया था।

द्वैधशासन

प्रान्तीय कौन्सिलों के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। चुने हुए सदस्य कम से कम सत्तर फ़ी सदी और सरकारी सदस्य

अधिक से अधिक बीस फ़ी सदी रक्खे गए। एक कौंसिल का जीवन तीन वर्ष तक के लिए रक्खा गया। प्रारम्भिक तीन वर्षों के बाद से कौंसिलों को अपना प्रेज़िडेण्ट स्वयं चुनने का अवसर दिया गया। कार्य और विधान मे भी हम पार्लियामेण्ट्री शासन की ओर बहुत कुछ प्रवृत्ति पाते हैं। पर कौंसिलों के रहने पर भी कौसिलों की दोषपूर्ण कार्यवाही को रोकने, आवश्यकता व्यय को मंजूर करने, और आवश्यकता पड़ने पर व्यवस्था प्राप्त करने का अधिकार गवर्नर को सौंपा गया।

केन्द्रीय शासन

केन्द्रित शासन प्रबन्ध में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन के लिए कुछ नहीं दिया गया। केन्द्रित व्यवस्थापिका सभाओं के दो विभाग बनाये गये। कौंसिल आफ़ स्टेट में ६० में से ४० निर्वाचित सदस्य हैं। बड़ी व्यवस्थापिका सभा के १४० सदस्यों में से १०० निर्वाचित सदस्य होते हैं। बड़ी व्यवस्थापिका सभा अपना सभापति स्वयं निर्वाचित करती है। कौन्सिल आफ़ स्टेट की साधारण अवधि पांच वर्ष है और बड़ी व्यवस्थापिका सभा की तीन वर्ष।

अन्य विधान

इस महत्वपूर्ण ऐक्ट के अनेक संविधानों में भारतमन्त्री की कौंसिल मे सुधार करना, इङ्गलैण्ड में भारत के एजेण्ट की हैसियत से काम करने के लिए हाई कमिश्नर की नियुक्ति, सिविल सर्विस के विषय में विधान, भारत में पब्लिक सर्विस की भर्ती और संयमन के लिए पब्लिक सर्विस कमिशन (Public Service Commission) की

नियुक्ति उल्लेखनीय है।

मॉण्ट-फोर्ड सुधारों की स्थापना—जिस समय भारत असहयोग के विषम और सशङ्क समुद्र में निमग्न था, उसी समय नवीन शासन विधान की स्थापना हुई और सन् १९२१की फ़रवरी में ड्यूक आफ़ कनाट ने देहली में विधिपूर्वक लेजिस्लेटिव ऐसेम्बली, कौंसिल आफ़ स्टेट और चेम्बर आफ़ प्रिंसेज़ को खोला। इस अवसर पर शाही सन्देश इन सार्थक शब्दों में अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ—"कई वर्षों से, और सम्भवत: कई पुश्तों से देशभक्त और राजभक्त भारतवासी अपनी मातृ-भूमि के लिए स्वराज्य का स्वप्न देख रहे हैं। आज मेरे साम्राज्य के अन्दर तुम्हारे स्वराज्य और अन्य उपनिवेशों द्वारा उपभोग की जाने वाली स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक अनेक सुविधाओं और अत्यन्त विस्तीर्ण कार्यक्षेत्र का आरम्भ होता है।"

राउण्ड-टेबल कान्फ्रेन्स—ऐक्ट में यह संविधान किया गया था कि हर दस वर्ष बाद एक शाही कमीशन, भारत में प्रचलित सुधारों की जांच करने और उत्तरदायित्व पूर्ण शासन के परिमाण को विस्तृत करने, सुधारने या रोक रखने के लिए नियुक्त किया जाय। फलतः एक कमीशन की नियुक्ति की गई, जिसके प्रधान सर जान साइमन थे।

इस कमीशन की रिपोर्ट तैयार होने के बाद इङ्गलैण्ड में भारत के सम्पूर्ण दलों तथा हितों के प्रतिनिधियों को बुला कर एक गोलमेज़ कान्फ्रैन्स की गई थी, इस कान्फ्रैन्स की दो बैठके